मरु कृषि चयनिका

भारत के शुष्क क्षेत्रों में
मरुस्थलीकरण, भूमि अवनयन, तटस्थता विशेषांक

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

आई.एस.ओ. 9001 : 2015

जोधपुर 342 003, राजस्थान, भारत

संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा संस्थान का राजभाषा निरीक्षण

समिति के माननीय सदस्यों को संस्थान निर्मित उत्पाद भेंट करते हुए

मरु कृषि चयनिका

भारत के शुष्क क्षेत्रों में
मरुस्थलीकरण, भूमि अवनयन, तटस्थता विशेषांक

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
आई.एस.ओ. 9001 : 2015
जोधपुर - 342 003, राजस्थान, भारत

भाग 22–23 : भारत के शुष्क क्षेत्रों में मरूस्थलीकरण, भूमि अवनयन, तटस्थता विशेषांक

(2022-2023)

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ. ओम प्रकाश यादव
निदेशक

संपादक

नवीन कुमार यादव
उपनिदेशक (राजभाषा)

संपादक मंडल

डॉ. पी.सी. मोहराना, प्रधान वैज्ञानिक (सदस्य)

डॉ. आर.एन. कुमावत, प्रधान वैज्ञानिक (सदस्य)

डॉ. दीपेश माचीवाल, प्रधान वैज्ञानिक (सदस्य)

डॉ. महेश कुमार, प्रधान वैज्ञानिक (सदस्य)

मुद्रक : एवरग्रीन प्रिण्टर्स, जोधपुर

मरूस्थल का कायाकल्प
काजरी का है संकल्प

प्रकाशन : **दिसम्बर, 2024**

लेखकों के विचारों से संपादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद,
कक्ष क्र. 101, कृषि अनुसंधान भवन II, नई दिल्ली 110 012 भारत
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
Room no. 101, Krishi Anusandhan Bhawan-II, Pusa, New Delhi-110 012 INDIA

डॉ. सुरेश कुमार चौधरी
उप महानिदेशक (प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन)
Dr. Suresh Kumar Chaudhari
Deputy Director General (Natural Resources Management)

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है कि भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी), जोधपुर द्वारा संस्थान की पत्रिका "मरू कृषि चयनिका" के विशेषांक "भारत के शुष्क क्षेत्रों में मरूस्थलीकरण, भूमि अवनयन, तटस्थता" का प्रकाशन किया जा रहा है।

संपूर्ण विश्व अनेक परिवर्तनों से गुजर रहा है। बढ़ती जनसंख्या, बदलती जीवन शैली, शहरीकरण का विस्तार और तीव्र गति से जलवायु परिवर्तन राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली के लिये नयी–नयी चुनौतियाँ पैदा कर रहे हैं। देश में खाद्य, पोषण, पर्यावरण और आजीविका सुरक्षा के लिये प्राकृतिक संसाधनों का सतत् प्रबंधन आवश्यक है। शुष्क क्षेत्रों में सतत् कृषि उत्पादन और संसाधन संरक्षण के लिये काजरी का योगदान अद्वितीय रहा है।

हाल के वर्षों में काजरी ने शुष्क क्षेत्रों में मरूस्थलीकरण के प्रवाह एवं प्रभाव को रोकने के साथ–साथ समन्वित कृषि प्रणाली, सौर उर्जा, बागवानी, पशुपालन, कृषि–पारस्थितिकी आदि क्षेत्रों में सराहनीय अनुसंधान कार्य किया है।

मुझे विश्वास है कि यह विशेषांक मरूस्थलीकरण के प्रवाह एवं प्रभाव को रोकने के सन्दर्भ में पाठकों को जागरूक करने में सफल होगा। मैं पत्रिका के प्रकाशन के लिये काजरी निदेशक एवं संपादक मंडल को बधाई एवं शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ।

(सुरेश कुमार चौधरी)

भाकृअनुप

ICAR

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद,
कृषि अनुसंधान भवन II, नई दिल्ली 110 012 भारत
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
Krishi Anusandhan Bhawan-II, Pusa, New Delhi-110 012 INDIA

डॉ. राजबीर सिंह
सहायक महानिदेशक (एएएफ एवं सीसी)
Dr. Rajbir Singh
Assistant Director General (AAF & CC)

संदेश

यह प्रसन्नता का विषय है कि भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान द्वारा हिन्दी पत्रिका मरू कृषि चयनिका का विशेषांक "भारत के शुष्क क्षेत्रों में मरुस्थलीकरण, भूमि अवनयन, तटस्थता" का प्रकाशन किया जा रहा है।

देश में खाद्य, पोषण, पर्यावरण और आजीविका सुरक्षा प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक संस्थानों का सतत् प्रबंधन करने की आवश्यकता है। गत सात दशकों से मरुस्थलीकरण और भूमि क्षरण रोकने के लिये काजरी द्वारा किये गये प्रयास सराहनीय हैं।

मुझे आशा है कि मरू कृषि चयनिका का यह विशेषांक मरुस्थलीकरण और भूमि अवनयन के सम्बन्ध में व्यापक स्तर पर जागरुकता लाने में सफल होगा।

पत्रिका के अनवरत प्रकाशन के लिए काजरी निदेशक एवं संपादक मंडल को बधाई तथा शुभकामनायें।

(राजबीर सिंह)

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर - 342 003 (राजस्थान), भारत
ICAR-Central Arid Zone Research Institute
(Indian Council of Agricultural Research)
Jodhpur - 342 003 (Rajasthan), India

डॉ. ओम प्रकाश यादव
निदेशक
Dr. O.P. Yadav
Director

संदेश

शुष्क क्षेत्र की चुनौतियों और अवसरों की दिशा में कार्यरत संस्थान के रूप में काजरी ने पिछले छह दशकों में विशिष्ट पहचान बनायी है। संस्थान द्वारा की जा रही अनुसंधान गतिविधियों के सुदूर मरूस्थल में रह रहे किसान से लेकर शीत शुष्क क्षेत्र के कृषक तक पहुँचाने में उनकी मातृभाषा एवं राजभाषा हिन्दी की भूमिका अति महत्वपूर्ण है।

भारत का शुष्क पश्चिमी क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न है परन्तु अल्प वर्षा, उच्च तापमान, हवाओं की तेज गति, उच्च वाष्पोत्सर्जन, मृदा की निम्न उर्वरता और कम जलधारण क्षमता के कारण यहां फसलोत्पादन अति न्यून है। इन विषम परिस्थितियों में कृषकों को कृषि नवोन्मेशों एवं तकनीकों की जानकारी उपलब्ध करवाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में काजरी निरंतर प्रयासरत है।

संस्थान की राजभाषा पत्रिका ''मरू कृषि चयनिका'' के विशेषांक – भारत के शुष्क क्षेत्रों में मरूस्थलीकरण, भूमि अवनयन, तटस्थता का प्रकाशन किया जा रहा है। मरू कृषि चयनिका में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेख सरल एवं सहज भाषा में प्रकाशित किये जाते हैं जिससे यह जन साधारण तक उपयोगी जानकारी पहुँचाने में प्रभावी साबित हो रही है। साथ ही संस्थान में आयोजित राजभाषा गतिविधियों की जानकारी भी पत्रिका का अभिन्न अंग है।

पत्रिका के सफल एवं अनवरत प्रकाशन की कामना करते हुये संपादक मंडल को बधाई।

(ओम प्रकाश यादव)

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
CENTRAL ARID ZONE RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR
1959

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर - 342 003 (राजस्थान), भारत
ICAR-Central Arid Zone Research Institute
(Indian Council of Agricultural Research)
Jodhpur - 342 003 (Rajasthan), India

सम्पादकीय

मरू कृषि चयनिका का भाग 22–23 ''भारत के शुष्क क्षेत्रों में मरूस्थलीकरण, भूमि अवनयन, तटस्थता'' विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी को लोकप्रिय लेखों के माध्यम से राजभाषा हिन्दी में प्रकाशित करने से पत्रिका अधिकाधिक लोगों तक उपयोगी सूचना पहुँचाने में सफल होगी।

वर्ष 2011–2013 की अवधि के लिये इसरो के अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र द्वारा तैयार किया गये ''भारत में मरूस्थलीकरण एवं भूमि अवनयन एटलस'' के अनुसार, देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 96.4 मिलियन हेक्टेयर अर्थात 29.32 प्रतिशत क्षेत्र मरूथलीकरण/भूमि अवनयन की प्रक्रिया से गुजर रहा है। भू–उपयोग परिवर्तन, भूमि उपयोग तीव्रता एवं जलवायु परिवर्तन ने मरूस्थलीकरण एवं भूमि क्षरण को तेजी से बढ़ाया है। इसका प्रतिकूल प्रभाव खाद्य सुरक्षा एवं पारिस्थतिकी तंत्र पर पड़ना निश्चित है। पत्रिका के विभिन्न लेखों में मरूस्थलीकरण एवं भू क्षरण संबंधी चुनौतियों के क्षेत्र में काजरी द्वारा किये जा रहे उपायों पर प्रकाश डाला गया है।

पत्रिका के प्रकाशन में मार्गदर्शन हेतु मैं संस्थान निदेशक, डॉ. ओम प्रकाश यादव के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। सम्पादक मंडल द्वारा किये गये बहुमूल्य सहयोग तथा लेखकों द्वारा प्रस्तुत उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक लेखों के लिये आभार।

(नवीन कुमार यादव)
संपादक एवं
उप निदेशक (राजभाषा)

विषय सूची

क्र.सं.	विषय वस्तु	पृष्ठ सं.
1.	**पश्चिमी राजस्थान में मरुस्थलीकरण रोकथाम में भाकृअनुप-काजरी की भूमिका** पी.सी. मोहराना, महेश कुमार एवं जे.पी. सिंह	1
2.	**पश्चिमी राजस्थान में वायु एवं जल जनित मृदा अपरदन एवं उसका नियंत्रण** प्रियब्रत सांतरा, महेश कुमार एवं जय प्रकाश सिंह	7
3.	**वनस्पति क्षरणः वर्तमान स्थिति तथा इसके नियंत्रण हेतु भावी रणनीतियाँ** जे.पी. सिंह एवं सुरेश कुमार	14
4.	**शुष्क क्षेत्र में भू-क्षरण नियंत्रण हेतु मृदा एवं जल संरक्षण युक्तियाँ** दीपेश माचीवाल	20
5.	**भारत के गर्म शुष्क क्षेत्र में भूमि क्षरण, मृदा गुणवत्ता और पौधों के पोषक तत्वों का खनन** आर.एस. यादव, महेश कुमार, धीरज सिंह एवं श्रवण कुमार	29
6.	**मृदा-रासायनिक क्षरणः संभावित कारण एवं संभाव्य समाधान** महेश कुमार, प्रियब्रत सांतरा, नवरतन पंवार एवं आर.एस. यादव	33
7.	**भूमि उत्पादकता में सुधार और भूमि क्षरण तटस्थता प्राप्त करने में जैविक मृदा कार्बन की भूमिका** नवरतन पंवार, श्रवण कुमार एवं महेश कुमार	41
8.	**क्षरित चराई भूमि पुनर्वास में शुष्क देशज झाड़ियों की सुरक्षात्मक एवं उत्पादक भूमिका** वी.एस. राठौड़ एवं जे.पी. सिंह	49
9.	**शुष्क क्षेत्र में मरुस्थलीकरण रोकने हेतु वैकल्पिक भू-उपयोग पद्धतियों का महत्त्व** मावजी पाटीदार, अनिल पाटीदार, सुगनचन्द मीणा, सारन्या रंगनाथन एवं दिलीप कुमार	53
10.	**पोषक तत्व खनन तथा मृदा उर्वरता का ह्रासः मृदा स्वास्थ्य कार्ड की भूमिका** एम.एल. सोनी, एन.डी. यादव, जे.पी. सिंह, बीरबल, वी.एस. राठौड, पी.सी. मोहराना एवं शीतल के.आर.	60
11.	**भारत में उष्ण शुष्क क्षेत्रों में चरागाहों की क्षरण स्थिति तथा भावी नीति विकल्प** जे.पी. सिंह एवं आर.एस. चौरसिया	70

12. **प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन में आधुनिक तकनीक सुदूर संवेदन का अनुप्रयोग** **74**
बृजेश यादव, लालचंद मालव, महावीर नोगिया, आर.एल. मीणा, आर.पी. शर्मा एवं बी.एल मीना

13. **जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में लद्दाख में गहराता जल संकट** **78**
राजेश कुमार गोयल, महेश कुमार गौड़ एवं महेश्वर सिंह कंवर

14. **बहुउपयोगी करोंदा** **82**
पी.आर. मेघवाल, अकथ सिंह एवं प्रदीप कुमार

15. **राजभाषा संबंधी गतिविधियाँ** **85**
नवीन कुमार यादव

16. **कविता – गाथा रेगिस्तान की** **89**
बिश्राम मीना 'सेवार्थी'

17. **कविता – बाजरा** **91**
कुसुम लता

पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थलीकरण रोकथाम में भाकृअनुप–काजरी की भूमिका

पी.सी. मोहराना[1], महेश कुमार[1] एवं जे.पी. सिंह[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

मरुस्थलीकरण समस्या पर विश्वव्यापी चर्चा अनेक मंचों पर हुई है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीकरण रोकथाम सम्मेलन (UNCOD), वर्ष 1977 के दौरान नैरोबी में आयोजित किया गया, जहाँ विश्व नेताओं ने उप–सहारा अफ्रीका में लंबे समय से पड़ रहे सूखे के प्रभाव के विषय पर प्रथम बार चर्चा की। इससे पूर्व, वर्ष 1927 में लैवॉडेन ने मरुस्थलीकरण को ट्यूनीशिया में रेंजभूमियों की समस्या से संबंधित पाया तथा वर्ष 1949 में ऑब्रेविल ने पश्चिम अफ्रीका में वनों की कटाई तथा अत्यधिक मृदा अपरदन को इस समस्या का मुख्य कारण माना।

मरुस्थलीकरण भू–अवक्षय की एक प्रकिया है, जो विभिन्न कारणों से विश्व के कई देशों में पायी जाती है। संयक्त राष्ट्र संघ की मरूस्थलीकरण निवारण संगोष्ठी (UNCCD) के अनुसार विश्व के शुष्क, अर्द्धशुष्क तथा पूर्ण शुष्क क्षेत्रों में होने वाले भू–अवक्षय को मरुस्थलीकरण कहा जाता है। मरुस्थलीकरण वर्तमान समय की सबसे बड़ी पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक है, यह मुख्यतः जलवायु संबंधित कारणों जैसे सूखा एवं अकाल द्वारा पेड़ पौधों का विनाश, वायु एवं जल द्वारा मृदा अपरदन, तथा मानव द्वारा वनों की कटाई, मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अनियमित दोहन एवं असामान्य कृषि प्रक्रियाओं के कारण होता है। अतः मरुस्थलीकरण से हमारा अभिप्राय केवल मरुस्थलों के विस्तार से नहीं है अपितु इससे भी अधिक, यह जलवायु परिवर्तन और मानवीय गतिविधियों के परिणामस्वरूप विश्व की शुष्क भूमियों के पारिस्थितिकी तंत्र का निरंतर क्षरण है। इसमें अस्थिर/सघन खेती, और अत्यधिक चराई से लेकर खनन और ईंधन और लकड़ी के लिए काष्ठीय प्रजातियों का अत्यधिक दोहन शामिल है। अतः मरुस्थलीकरण को शुष्क भूमि की जैविक या आर्थिक उत्पादकता में कमी या हानि के रूप में परिभाषित किया गया है। शुष्क, अर्ध–शुष्क और शुष्क उप–आर्द्र क्षेत्रों में भू–क्षरण विभिन्न कारकों जैसे जलवायु परिवर्तन एवं मानवीय गतिविधियों आदि विभिन्न कारकों के परिणामस्वरूप होता है।

राष्ट्रीय स्तर पर भू-क्षरण की स्थिति

- वर्ष 2018–19 के आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में 97.85 मिलियन हेक्टेयर भूमि जो कि देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 29.77 प्रतिशत है, भू–क्षरण से प्रभावित है। जबकि वर्ष 2011–13 के दौरान यह अवक्रमित क्षेत्र 96.40 मिलियन हेक्टेयर (29.32 प्रतिशत) में सीमित था। अतः वर्ष 2011–13 से 2018–19 की अवधि में भू–क्षरण के अंतर्गत 1.45 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र की संचयी वृद्धि हुई है जो कि देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 0.44 प्रतिशत है।
- देश में मरुस्थलीकरण/भू–क्षरण की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं में जल अपरदन (11.01 प्रतिशत), वनस्पति क्षरण (9.15 प्रतिशत) और वायु अपरदन (5.46 प्रतिशत) सम्मिलित है।

राज्य स्तर पर भू-क्षरण की स्थिति

- अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र (एसएसी–2021) के हाल में प्रकाशित मानचित्रण के अनुसार वर्ष 2018–19 की अवधि के लिए राजस्थान राज्य में 21.23 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र अर्थात् कुल भौगोलिक क्षेत्र के 62.06

[1]प्रधान वैज्ञानिक

प्रतिशत में भू–क्षरण की विभिन्न प्रक्रियाएँ व्याप्त हैं। जबकि वर्ष 2011–13 की अवधि के दौरान कुल भू–क्षरण क्षेत्र 21.52 मिलियन हेक्टेयर (62.90 प्रतिशत) था। अतः राजस्थान में वर्ष 2011–13 से वर्ष 2018–19 के दौरान 2,88,847 हेक्टेयर (0.84 प्रतिशत) अवक्रमित क्षेत्र की संचयी कमी आई है।

- राज्य में मरुस्थलीकरण/भू–क्षरण की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं में वायु अपरदन (43.37 प्रतिशत), वनस्पति क्षरण (7.64 प्रतिशत), जल अपरदन (6.21 प्रतिशत), लवणता/क्षारीयता (1.07 प्रतिशत) और चट्टानी/बंजर क्षेत्र (3.07 प्रतिशत) है।
- राजस्थान के लिए वर्तमान आंकड़ाकोष (वर्ष 2018–19) से ज्ञात हुआ कि राज्य में वायु अपरदन द्वारा प्रभावित क्षेत्रों में 4,88,839 हेक्टेयर की कमी आई है जबकि वर्ष 2003–05 की अपेक्षा खनन–प्रेरित भू–क्षरण में 30931 हेक्टेयर की वृद्धि हुई है।

राजस्थान में मरुस्थलीकरण में हुई कमी के संभावित कारण

(अ) रेतीले क्षेत्रों में बढ़ता वनस्पति आच्छादन

- पश्चिमी राजस्थान के अधिकांश रेतीले क्षेत्रों में बढ़ता हुआ हरित या वनस्पति आच्छादन, जिसमें कृषि फसलें भी शामिल हैं जो कि मरूरूथलीकरण में हुई कमी का एक सटीक प्रमाण है। मोडिस– सामान्यीकृत अंतर वनस्पति सूचकांक (एनडीवीआई) के परिणाम इंगित करते हैं कि पश्चिमी राजस्थान में वनस्पति आवरण का विस्तार वर्ष 2010 में 13.54 प्रतिशत से वर्ष 2020 के दौरान बढ़कर 21.11 प्रतिशत हो गया।
- इसके अतिरिक्त लैंडसैट–8 छवियों की सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग) से प्राप्त संकेतानुसार जोधपुर जिले में रबी का फसल क्षेत्र वर्ष 2000 के दौरान 7.55 प्रतिशत से वर्ष बढ़कर 2020 के दौरान 21.26 प्रतिशत हो गया।
- इसके साथ ही सिंचित फसल उपयोग ने रेतीले टीलों वाली कृषि योग्य बंजर भूमि को आंशिक रूप से स्थिर कर दिया है। फसल आच्छादन के कारण इस क्षेत्र में वर्ष 1990 से पहले वर्षभर होने वाली रेत और धूल की घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता में कमी हुई है।

(ब) रेतीले टीलों के स्थिरीकरण एवं रक्षक पट्टी रोपण का प्रभाव

- रेतीले टीलों के स्थिरीकरण के लिए भाकृअनुप–काजरी द्वारा विकसित वानस्पतिक अवरोध वाली अग्रणी तकनीक, जिसमें विभिन्न प्रकार के सतह प्रारूप (चेकरबोर्ड, समानांतर और क्षैतिज प्रकार) के साथ स्थानीय घासों, झाड़ियों, एवं पेड़ों का रोपण शामिल है, आज भी उपयोग में है। इसी प्रकार सूक्ष्म–जलवायु स्थिति की तीव्रता को कम करने में सड़कों, नहरों के किनारे और वर्तमान में व्यापक रूप से कृषि भूमि में रक्षक पट्टी प्रणाली में रोपण की गई पेड़, झाड़ियाँ आदि वाली त्रिस्तरीय रक्षक पट्टियों का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। अतः रेत के कटाव एवं जमाव की तीव्रता और कृषि भूमि व बुनियादी ढांचों पर इसके प्रभाव को कम करने में रक्षक पट्टियाँ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

झुंझुनू जिले में जलदरित भूमि, वनस्पति क्षरण एवं मृदा ह्रास

राजस्थान के अनेक भागों में खनन मानव निर्मित भूमि क्षरण का एक स्वरूप

(स) अन्य कारण

- सिंचाई जल प्रबंधन की बेहतर प्रणाली (सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली जैसे सूक्ष्म फव्वारा, बूंद–बूंद प्रणाली) बड़े कृषि क्षेत्रों में भूजल संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करने में मददगार साबित हुई है। परिणामतः वर्ष 2020 तक, रेतीले क्षेत्र (जोधपुर का मध्य भाग, जैसलमेर का पूर्वी, बीकानेर का दक्षिणी एवं दक्षिणी–पूर्व और चुरू का दक्षिणी भाग) सिंचित रबी फसल भूमि में परिवर्तित हुए हैं।
- नहर कमान और बारानी दोनों क्षेत्रों में सिंचाई के उद्देश्य से नहर और भूजल के तर्कसंगत उपयोग के लिए डिग्गी जैसी संरचनाओं के निर्माण की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।
- लवणीयता एवं क्षारीयता की समस्या से प्रभावित कृषि अयोग्य मृदाओं को नवीनतम तकनीको जैसे निक्षालण, जिप्सम और अन्य भूमि सुधारकों के प्रयोग एवं अनुकूल प्रबंधन द्वारा कृषि योग्य बनाकर इन्हें बारानी एवं सिंचित कृषि हेतु प्रयोग में लाने से मरूस्थल की रोकथाम में सफलता मिली है।
- अनुसंधान संस्थानों जैसे कि भाकृअनुप–काजरी द्वारा विकसित एवं अनुशंसित उन्नत कृषि–वानिकी, वन–चरागाह एवं बागवानी प्रणालियों को स्थानीय किसानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाना भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है।
- उन्नत रोपण सामग्री/बीज उत्पादन और किसानों को इनकी आपूर्ति होने का भी लाभ मिला है।

मरुस्थलीकरण और सूखे से निपटने के लिए वैश्विक प्रयास

मरुस्थलीकरण से निपटने के लिये संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीकरण रोकथाम सम्मेलन (यूएनसीसीडी), जो पर्यावरण और विकास को स्थायी भूमि प्रबंधन से जोड़ने वाला एकमात्र अंतर्राष्ट्रीय समझौता है, की स्थापना 1994 में की गई। यूएनसीसीडी का उद्देश्य मरुस्थलीकरण और सूखे के प्रभावों से निपटने हेतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किये गए प्रयासों से समस्त विश्वभर में जनमानस को अवगत कराना है। मरुस्थलीकरण और सूखे से निपटने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 1994 से प्रत्येक वर्ष 17 जून को "मरुस्थलीकरण एवं सूखा निवारण" विश्व दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह दिन हमें "भूमि क्षरण तटस्थ विश्व" विश्वव्यापी विचार के लिए हमारी जिम्मेदारियों और प्रतिबद्धताओं को याद दिलाता है तथा साथ ही संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीकरण रोकथाम सम्मेलन और उसके 'कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज' (सीओपी) के "क्षरित भूमि प्रत्यास्थापन" के संकल्प की ओर हमारा ध्यान केंद्रित करता है। भारत भी वर्ष 2030 तक 26 मिलियन हेक्टेयर क्षरित भूमि प्रत्यास्थापन के लिए प्रतिबद्ध है। इन सभी संकल्पों और कार्य योजनाओं से संकेत मिलता है कि "मरुस्थलीकरण" की समस्या अभी भी वैश्विक चिंता का विषय बनी हुई है।

इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र द्वारा, वर्तमान दशक (वर्ष 2021 से 2030) पारिस्थितिकी तंत्र के पुनःस्थापन को समर्पित किया गया है जिसका उद्देश्य पारिस्थितिक तंत्र के

फसल भूमि में रेतीले टिब्बों की वजह से रेत जमाव जो कि फसल वृद्धि के लिए हानिकारक है

सिंचित क्षेत्रों में भी बालू अतिक्रमण से प्रभावित चना फसल क्षेत्र

क्षरण को रोकना और वैश्विक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उन्हें पुनःस्थापित करना है। अतः इस दशक में मानव जाति और प्रकृति के हित के लिए समूचे विश्व में पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण और पुनरुद्धार के लिए आह्वान किया गया है जिसमें देश के प्रत्येक नागरिक का सक्रिय योगदान अपेक्षित है। अन्य भूमियों की अपेक्षा मरूस्थल के संदर्भ में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि भू–क्षरण तटस्थता के लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रस्तावित कार्य पूर्ण लगन एवं सजगता से किये जायें।

वर्ष 2022 के मई माह में केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्री ने पश्चिमी अफ्रीका के राष्ट्र 'कोट डी आइवर' में यूएनसीसीडी के सीओपी के पंद्रहवें सत्र को संबोधित कर भूमि के सतत् प्रबंधन को सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई का आह्वान किया। इस सम्मेलन में सूखा, भूमि की बहाली, भूमि अधिकार, लैंगिक समानता और युवा सशक्तीकरण जैसे मुद्दे शामिल रहे।

मरुस्थलीकरण और सूखे से निपटने के लिए कैसे योगदान करें?

(1) वृक्षारोपण में सहयोग द्वारा: वृक्षारोपण प्राकृतिक पर्यावरण में सुधार का एक सरल लेकिन प्रभावी तरीका है। वृक्षारोपण से हमारा उद्देश्य केवल पौधा लगाना नहीं अपितु यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि रोपित किये गए पौधों का पूर्ण परिपक्वता तक विकास हो। इसके लिए हमें स्थान विशेष के लिए उपयुक्त देशीय प्रजातियों का चयन करना होगा जो कि न केवल पारिस्थितिक रूप से उपयोगी हों, बल्कि वे क्षेत्रवासियों के लिए पोषण, पशुआहार, जलाउ ईंधन आदि या सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके, उन्हें जीवित रहने और पनपने का अवसर मिलेगा। साथ ही पेड़ को परिपक्व होने तक समयानुसार पानी की व्यवस्था तथा उसे वन्यजीवों से संरक्षित करने हेतु भी प्रयास किये जाने चाहिये। मरूस्थलीय पारिस्थितिकी को देखते हुए यहाँ की देशीय वृक्ष प्रजातियों में प्रमुख रूप से खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनिरेरिया*), रोहिडा (*टेकोमेला अनडुलाटा*), कुमट (*एकेसिया सेनेगल*), मीठा जाल (*सेलवेडोरा ओलआइडिस*), खारा जाल (*सेलवेडोरा पर्सिका*), बबूल (*एकेसिया निलोटिका*), धो (*एनागिसस पेंडुला*) तथा झाड़ी प्रजातियों में फोग (*केलिगोनम पोलिगोनोआइडिस*), कैर (*केपेरिस डेसिडुआ*), बोर्डी (*जिजिफस नुमुलेरिया*), बावली (*एकेसिया जेकमोंसाई*) आदि सम्मिलित हैं।

(2) पारिस्थितिकी शिविरों का आयोजन: मरूस्थलीकरण एवं सूखा से निपटने तथा सतत् प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिए जनजागरण अभियान की नितांत आवश्यकता है जिससे हमारी वर्तमान और भावी पीढ़ियों को लाभ मिलता रहे। जनजागरण अभियान हेतु ग्राम पंचायत स्तर पर पारिस्थितिकी शिविरों का आयोजन एक महत्वपूर्ण कदम होगा। इस कार्यक्रम में उस क्षेत्र के प्रबुद्धजनों को आमंत्रित कर उनके अनुभवों का लाभ लिया जाना चाहिए। साथ ही विशेष रूप से युवा वर्ग को जोड़ना होगा, जिनकी

टीलों पर वृक्षारोपण का रेत की आवाजाही पर सकारात्मक प्रभाव

गर्मी के मौसम के दौरान सड़कों पर रेत की आवाजाही से अतिक्रमण

दीर्घकालीन परियोजनाओं में महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। इन शिविरों में परिचर्चा के साथ–साथ प्रायोगिक रूप से सजीव प्रदर्शन का भी प्रयास होना चाहिए।

(3) विद्यालय स्तर पर मरूस्थलीकरण एवं सूखा दिवस का आयोजन: संयुक्त राष्ट्र द्वारा मरुस्थलीकरण और सूखे का मुकाबला करने के लिए 17 जून को विश्व दिवस चिह्नित किया है। इस संबंध में विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करनें हेतु प्रदेश के मरूस्थलीय जिलों में विद्यालय स्तर पर मरुस्थलीकरण दिवस का आयोजन करने की आवश्यकता है। इस बात का भरपूर प्रयास होना चाहिए कि विद्यार्थियों को मरुस्थलीकरण दिवस के महत्व को समझा सकें।

(4) पर्यावरणीय परियोजनाओं में स्वयंसेवकों की भूमिका द्वारा: राष्ट्रीय स्तर पर मरुस्थलीकरण व सूखे से निपटने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। पर्यावरण से संबंधित परियोजना के क्षेत्र के स्थानीय नागरिक उसमें स्वयंसेवक की भूमिका निभाकर अपना योगदान दे सकते हैं। पर्यावरणीय मुद्दों के प्रबंधन के लिए गैर–सरकारी संस्थाओं को भी अपना योगदान देकर इनसे जुड़ना चाहिए।

(5) भू-विरासत स्थलों के लिए स्वच्छता अभियान: भारतीय थार मरूस्थल अपनी भू–विरासत स्थलों के लिए जाना जाता है, जो कि शोध एवं पर्यटन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। भू–विरासत स्थलों जैसे कि जैसलमेर जिले के सम–धनाना–कनोई तथा जोधपुर जिले के देचू–शेतरावा–ऑसियां–भीकमकोर ग्रामों के रेतीले टिब्बे; जैसलमेर, बीकानेर, बाड़मेर, जोधपुर जिलों में अवस्थित ओरणों; गोचर/बीर, आदि के पास रहते हैं, उनके द्वारा इन स्थलों की स्वच्छता बनाए रखने में शामिल होने का प्रयास किया जाना चाहिए।

सारांश

पश्चिमी राजस्थान के कृषि परिदृश्य को देखते हुए यह कहना उपयुक्त होगा कि मरुस्थलीय क्षेत्र में बहुत तेजी से कृषि परिवर्तन हो रहे हैं और यह क्षेत्र आने वाले समय में कृषि के दृष्टिकोण से आकर्षण का केंद्र बना रहेगा। सामान्यीकृत अंतर वनस्पति सूचकांक (एनडीवीआई) के आंकड़ों के परिणाम इंगित करते हैं कि मरुस्थलीय क्षेत्र अब हरा–भरा हो रहा है। भाकृअनुप–काजरी संस्थान की मरुस्थलीकरण अध्ययन एवं अनुसंधान में महती भूमिका, उतनी ही पुरानी है जितनी कि वर्ष 1959 में इसकी स्थापना की है, संस्थान ने इस क्षेत्र में एक स्पष्ट प्रभाव दर्शाया है। यह संस्थान मरुस्थलीकरण पहलू पर अग्रणी संस्थानों में गिना जाना जाता है एवं देश के शुष्क क्षेत्रों के लिए आंकड़ाकोष बनाने हेतु पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय और भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के लिए एक सहभागी संस्थान भी है।

रेत की गतिशीलता, कृषि भूमि, सड़कों और रेलवे लाइनों पर इसके अतिक्रमण को रोकने हेतु स्थानीय स्तर के समाधान को अमल में लाने में काजरी संस्थान का प्रयास प्रभावी साबित हुआ है। वायु अपरदन अध्ययन, उन्नत सुदूर

खनन गतिविधियों एवं खदानों के ढेरों से खराब हुई फसलभूमि

फसल भूमि में लवणता का खतरा

संवेदन प्रौद्योगिकियों के माध्यम से संसाधनों की सूची और कृषि में अन्य उन्नत तकनीकों पर संस्थान की नवीन विशेषज्ञता क्षरित भूमि प्रत्यास्थापन के वर्तमान मुद्दों को संबोधित करने के लिए एक प्रोत्साहन है। स्थानीय स्तर से सृजित मात्रात्मक आंकड़ाकोष 'कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज' दूरदर्शिता के मद्देनजर वैश्विक गतिविधियों हेतु साक्ष्य प्रदान करने के लिए परिसंपत्ति है। उदाहरणार्थ, राजस्थान के उत्तरी–पश्चिमी भाग में इंदिरा गांधी नहर परियोजना क्षेत्र से जलभराव और लवणता जैसी पर्यावरणीय समस्याओं को देखते हुए राजस्थान में नर्मदा नहर कमान क्षेत्र में क्षेत्र सर्वेक्षण के माध्यम से लवणता के खतरे के जोखिम को कम करने हेतु योजना बनाने के लिए विस्तार से अध्ययन किया गया है।

उपरोक्त बिंदुओं के मद्देनजर विभिन्न माध्यमों से मरुस्थलीकरण और सूखे के बारे में जन जागरूकता को बढ़ावा देना होगा। इसके साथ ही, जनमानस को यह बताना भी महत्वपूर्ण होगा कि मरुस्थलीकरण और सूखे का समाधान संभव है, तथा प्रभावी तरीकों को अपनाकर इनसे निपटा जा सकता है एवं भू–क्षरण तटस्थता प्राप्त की जा सकती है। मरुस्थलीकरण को रोकने के जो आवश्यक कदम हैं उनमें शुष्क भूमि में पादप आच्छादन को बढ़ाने के लिए वृक्षारोपण एक महत्वपूर्ण आयाम है। इसमें हमें भली प्रकार अनुकूलित देशीय प्रजातियों का चयन कर यह सुनिश्चित करना चाहिये कि पारिस्थितिकी रूप से अनुकूल, बहुउद्देशीय और विपणन–योग्य प्रजातियों का रोपण किया जाए जो कि वर्ष के किसी भी महीने में कई प्रकार के लाभ प्रदान कर सकें तथा मरूस्थलवासियों की आजीविका में योगदान दे सके।

★ ★ ★

पश्चिमी राजस्थान में वायु एवं जल जनित मृदा अपरदन एवं उसका नियंत्रण

प्रियब्रत सांतरा[1], महेश कुमार[1] एवं जय प्रकाश सिंह[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

भूमिका

जल और वायु के माध्यम से होने वाला मृदा क्षरण भू–अवक्रमण की एक प्रमुख प्रक्रिया है, जो विश्वभर में मृदा की उत्पादकता को प्रभावित करती है। ऐसा अनुमान है कि हर वर्ष वायु और जल अपरदन से लगभग 75 अरब मीट्रिक टन मृदा उड़ जाती है और इनमें से अधिकतर मृदा का निष्कासन कृषि भूमि से होता है। हालांकि, नष्ट हुई मृदा का 75 प्रतिशत अंश अंततः दूसरे स्थानों पर जमा हो जाता है और इस प्रकार मृदा वास्तव में परिदृश्य में ही विद्यमान रहती है। लेकिन कटाव का स्रोत क्षेत्र जैसे कृषि क्षेत्र अंततः प्रभावित होता है। विश्व की लगभग 80 प्रतिशत कृषि भूमि मध्यम से गंभीर मृदा कटाव की समस्या से प्रभावित है जबकि 10 प्रतिशत भूमि मामूली से मध्यम मृदा क्षरण से ग्रस्त है। एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में मृदा कटाव की औसत दर 40 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष है, हालाँकि संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप में यह लगभग 17 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष है। जबकि, प्रत्येक 100 से 1000 वर्षों में ऊपरी मृदा के निर्माण की दर लगभग 2.5 से. मी. है, जो कि 0.4 से 4 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष के बराबर है। इसलिए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कटाव के माध्यम से मृदा की हानि मृदा के निर्माण की प्राकृतिक दर से कहीं अधिक है।

शुष्क पश्चिमी राजस्थान में वायु और जल द्वारा मृदा–क्षरण एक सतत् प्रक्रिया है जिसमें वायु द्वारा क्षरण प्रमुख है, जिससे कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 76 प्रतिशत प्रभावित है। हालाँकि, पश्चिमी राजस्थान की पूर्वी सीमा पर स्थित जोधपुर क्षेत्र में 200 से 400 मि.मी. औसत वार्षिक वर्षा होने के बावजूद भी जल अपरदन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। वायु अपरदन ज्यादातर गर्मी के महीनों (अप्रैल–जून) के दौरान, जबकि जल अपरदन बारिश के मौसम (जुलाई–सितंबर) के दौरान होता है और अधिकांशतया कृषि क्षेत्र और चरागाह में होता है। हाल के दिनों में, विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के संदर्भ में, भूमि प्रबंधन प्रथाओं पर ध्यान देने की आवश्यकता बढ़ रही है ताकि वायु और जल अपरदन दोनों प्रक्रियाओं द्वारा ऊपरी उपजाऊ मृदा हानि को कम किया जा सके। इन दोनों अपरदन प्रक्रियाओं द्वारा होने वाले मृदा के नुकसान को नियंत्रित करने के लिए उपयुक्त भूमि प्रबंधन क्रिया का चयन भू–अपरदन की तीव्रता पर निर्भर करता है। सुधारात्मक उपायों को पहले उच्च प्रवण क्षेत्रों में लागू किया जाता है। इसलिए, मृदा हानि की संभावित दर के बारे में जानकारी होने से मृदा संरक्षण के उपायों को अमल में लाने के लिए प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की आसानी से पहचान हो जाती है।

भारत में लगभग 12.4 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र वायु अपरदन से प्रभावित है। राजस्थान में भारत का पश्चिमी भाग, जो देश के गर्म शुष्क क्षेत्रों का 62 प्रतिशत है, अपने विशाल रेतीले क्षेत्रो और जलवायु विशेषताओं के कारण ज्यादातर वायु अपरदन से प्रभावित है (चित्र 1)। पश्चिमी शुष्क क्षेत्र के लगभग 48 प्रतिशत भाग में विभिन्न प्रकार और आकारिकी के टीले हैं और इस क्षेत्र में 76 प्रतिशत क्षेत्र वायु अपरदन और निक्षेपण गतिविधियों से प्रभावित है।

पश्चिमी राजस्थान में वायु जनित मृदा-क्षरण की तीव्रता

पश्चिमी राजस्थान की वायु जनित मृदा–क्षरण की तीव्रता को पाँच तीव्रता श्रेणियों के तहत् तालिका 1 में प्रस्तुत किया गया है, यथा बहुत तीव्र, तीव्र, मध्यम, मामूली और नगण्य। यह देखा गया है कि पश्चिमी शुष्क क्षेत्र में

[1]प्रधान वैज्ञानिक

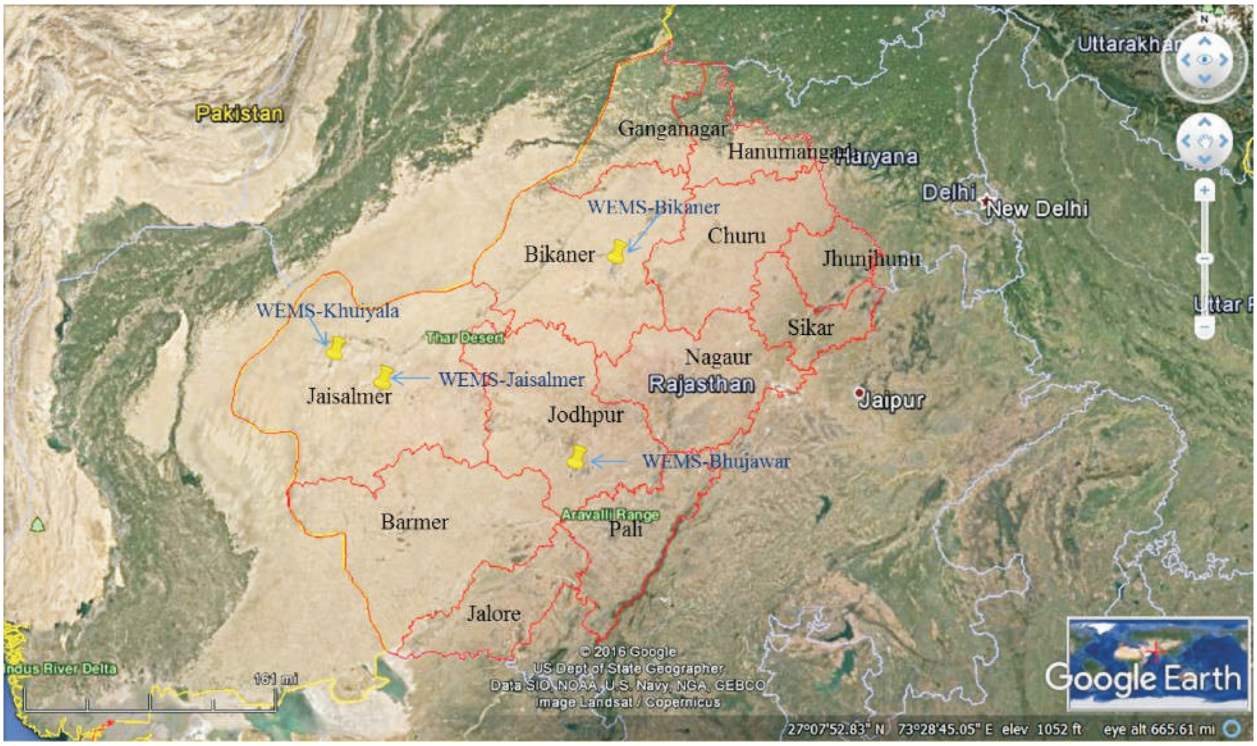

चित्र 1 पश्चिमी राजस्थान की भौगोलिक स्थिति

जैसलमेर जिला वायु अपरदन द्वारा बहुत गंभीर रूप से प्रभावित है, जबकि पूर्वी शुष्क क्षेत्र में जोधपुर, जालौर और पाली जिले वायु अपरदन द्वारा नगण्य रूप से प्रभावित हैं। इस क्षेत्र में वायु अपरदन की दिशा अधिकतर दक्षिण–पश्चिम से दक्षिण की ओर होती है और इसलिए मानचित्र में दक्षिण–पश्चिम कोने से उत्तर–पूर्व कोने तक विस्तारित क्षेत्र बाड़मेर, फलोदी, चुरू आदि जिलों में तीव्र अपरदन से प्रभावित क्षेत्रों को स्पष्ट दर्शाता है। कुल मिलाकर पश्चिमी गर्म शुष्क क्षेत्र का 50.33 प्रतिशत हिस्सा वायु अपरदन द्वारा मध्यम से लेकर बहुत तीव्र रूप से प्रभावित है।

वायु अपरदन के कारण मृदा हानि की वार्षिक दर तालिका 2 में प्रस्तुत की गई है। मृदा हानि दर काफी हद तक तीव्रता के साथ भिन्न होती है, जैसे यह बहुत तीव्र श्रेणी में 83.3 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष है और मामूली श्रेणी में 1.3 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष है। मृदा हानि की इन दरों को मृदा गहराई के बराबर हानि में बदलने के परिणामस्वरूप बहुत तीव्र और मामूली वायु अपरदन तीव्रता श्रेणी में मृदा हानि दर क्रमशः 5.27 मि.मी. प्रति वर्ष और 0.08 मि.मी. प्रति वर्ष है। पश्चिमी राजस्थान में मृदा हानि की इन दरों की तुलना में विश्व के विभिन्न स्थानों पर वायु अपरदन

तालिका 1 पश्चिमी राजस्थान में वायु जनित मृदा–क्षरण की तीव्रता

मृदा–क्षरण तीव्रता की श्रेणी	क्षेत्र (वर्ग कि.मी.)	कुल क्षेत्र का प्रतिशत
बहुत तीव्र	5800	2.78
तीव्र	25540	12.23
मध्यम	73740	35.32
मामूली	52690	25.24
नगण्य	50981	24.43

के कारण मृदा की वार्षिक संभावित हानि की औसत दर का तालिका 2 में भी उल्लेख किया गया है। पश्चिमी राजस्थान में मृदा हानि की दर पश्चिम अफ्रीका और नाइजीरिया की तुलना में थोड़ी कम है तथा यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी और अमेरिका की तुलना में अधिक है। वहीं दूसरी ओर चीन में वायु अपरदन की दर पश्चिमी राजस्थान में अपरदन की दर के बराबर है।

अपरदित मृदा में पोषक तत्व के परिमाण स्वाभाविक मृदा से अधिक होते हैं एवं इसको पोषक तत्व संवर्धन कारक द्वारा नापा जाता है। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम के लिए पोषक तत्व संवर्धन कारक क्रमशः 1.81, 1.68 और 1.42 मानते हुए, वायु अपरदित मृदा में पोषक तत्व की औसत हानि 0.09 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति टन, 0.01 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति टन और 0.18 कि.ग्रा. पोटेशियम प्रति टन पायी गई। वायु अपरदन के माध्यम से पोषक तत्वों की औसत हानि तालिका 3 में दर्शाई गई है।

तालिका 2 देश में पश्चिमी राजस्थान सहित विभिन्न देशों में वायु अपरदन द्वारा मृदा हानि की वार्षिक दर

क्रमांक	देश	वर्ष समयावधि	स्थान	मृदा हानि की वार्षिक दर (टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष)
1	भारत	2013–2014	खुइयाला, जैसलमेर	83.3
		2010–2013	काजरी फार्म, बीकानेर	50.0
		2009–2011	काजरी फार्म, जैसलमेर	12.2
		2011–2013	भुजावर, जोधपुर	1.3
2	चीन	1905–2000	इनर मंगोलिया, बीजिंग, शांगडोंग, शांक्सी, किंघई, झिंजियांग	7.44 से 349.5
3	जर्मनी	–	पूर्वी अंगिला	21
		1981–1993	ग्रोनहिन	0.43 (अधिकतम 10)
4	यूनाइटेड किंगडम	1970–1998	बरहम	1.56 (अधिकतम 15.5)
		1999–2000	उत्तरी पेनिंस में मूर हाउस	0.46 से 0.48
5	संयुक्त राज्य अमेरिका	1975	संयुक्त राज्य अमेरिका के विशाल मैदान	15.8 से 262.3
		1977	संयुक्त राज्य अमेरिका के विशाल मैदान	4.74 से 674.7
		1982	कॉर्न बेल्ट, लेक स्टेट्स, पर्वत, उत्तरी मैदान, पैसिफिक, दक्षिणी मैदान	3.3 (0.9 से 9.9)
		2007	कॉर्न बेल्ट, लेक स्टेट्स, पर्वत, उत्तरी मैदान, पैसिफिक, दक्षिणी मैदान	2.1 (0.2 से 6.2)
6	पश्चिम अफ्रीका, नाइजीरिया	–	साहेल क्षेत्र	190
		–	साहेल क्षेत्र	521.4
		–	बनिज़ौंबौ	15 से 21
		–	साहेल क्षेत्र	48.5
		–	सदोर	34

*1 मि.मी. प्रति वर्ष की मृदा हानि दर 15.8 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष के बराबर है।

तालिका 3 : तीव्रता की विभिन्न श्रेणियों के तहत वायु अपरदित मृदा में पोषक तत्वों की हानि

मृदा–क्षरण तीव्रता श्रेणी	पोषक तत्वों की हानि दर (कि.ग्रा. प्रति टन प्रति वर्ष)		
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटेशियम
बहुत तीव्र	7.58	1.25	14.79
तीव्र	4.55	0.75	8.87
मध्यम	1.11	0.18	2.16
मामूली	0.12	0.02	0.23

जोधपुर में जल जनित मृदा-क्षरण

जोधपुर जिले में जल अपरदन के कारण मृदा हानि की संभावित दर तालिका 4 में प्रस्तुत की गई है। कुल मिलाकर, जोधपुर जिले के 72.67 प्रतिशत क्षेत्र में जल जनित मृदा हानि की दर बहुत कम है। जोधपुर जिले का मात्र 1.92 प्रतिशत क्षेत्र गंभीर, बहुत गंभीर और अत्यंत गंभीर श्रेणी में आता है। फलोदी तहसील में मृदा हानि दर बहुत कम (≤5 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष) पाई गई है, जबकि भोपालगढ़ और बिलाड़ा तहसील में यह अन्य तहसीलों की अपेक्षा अधिक थी।

तालिका 4 जोधपुर जिले में जल अपरदन के कारण मृदा हानि की संभावित दर

मृदा हानि की श्रेणी	मृदा हानि की दर (टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष)	प्रतिशत क्षेत्र
बहुत कम	≤5	72.67
निम्न	5 – 12	14.45
मध्यम	12 – 50	10.95
तीव्र	50 – 100	1.28
बहुत तीव्र	100 – 200	0.39
अत्यंत तीव्र	≥200	0.25

मृदा अपरदन का कृषि उत्पादन पर प्रभाव

मृदा अपरदन 5 प्रक्रियाओं द्वारा फसल उत्पादकता को प्रभावित करता है, यथा (1) पोषक तत्वों से भरपूर ऊपरी मृदा को हटाना, जो मृदा के स्थानांतरण द्वारा मृदा के उपजाऊपन में कमी होना, की उत्पादकता को प्रभावित करता है, (2) ऊपरी मृदा की मोटाई में कमी होने के कारण जड़ की गहराई सीमित होना, (3) कार्बनिक पदार्थों का निष्कासन, (4) उच्च जल प्रतिधारण क्षमता वाले मृदा के महीन कणों का अपने स्थान से हटना, और (5) मृदा के सूक्ष्म जीवों का विस्थापन एव नाश होने से मृदा स्वास्थ्य का बिगड़ जाना। फसलों पर हवा के कटाव का मुख्य प्रभाव पोषक तत्वों से भरपूर ऊपरी मृदा के बह जाने से पड़ता है, जिससें निम्न पोषक तत्वों वाला एक मोटा अध:स्तर ही शेष रह जाता है। मृदा अपरदन के अन्य प्रभावों में शामिल हैं रेत के तूफान से कोमल तनों और पत्तियों पर घर्षण क्रिया के कारण फसल की क्षति, और वातज तलछट के जमाव द्वारा फसल का मृदा में दबना आदि शामिल हैं। फसल उत्पादकता पर मृदा कटाव का प्रभाव स्पष्ट दिखाई नहीं देता है क्योंकि मृदा क्षरण एक धीमी प्रक्रिया है, अर्थात् मृदा क्षरण का वार्षिक परिवर्तन अपेक्षाकृत कम है जबकि फसल की पैदावार का वार्षिक परिवर्तन अधिक है क्योंकि प्रबंधन, वर्षा और अन्य कारकों के कारण पैदावार काफी भिन्न होती

है। इसके अलावा, फसल उत्पादन प्रणालियों में तकनीकी हस्तक्षेप प्रायः फसल उत्पादकता पर मृदा क्षरण के प्रभाव को अदृष्ट कर देते हैं।

पश्चिमी राजस्थान में वायु अपरदन के कारण फसल उत्पादन और आर्थिक नुकसान की गणना पोषक तत्वों और उपज में हानि के प्रभाव को जोड़कर की गई। यह पाया गया कि बहुत तीव्र रूप से प्रभावित क्षेत्रों में प्रमुख फसलों की उपज का अंतर 57 से 82 प्रतिशत के बीच था, जिसमें से लगभग 9 से 67 प्रतिशत वायु अपरदन के कारण हुआ। कुल उपज अंतराल में वायु अपरदन का अंशदान बाजरा के लिए सबसे अधिक और गेहूँ और सरसों के लिए सबसे कम पाया गया। वायु अपरदन के कारण उपज में कमी अत्यधिक प्रभावित क्षेत्रों में बाजरा के लिए 195 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष पायी गई, जबकि मोठ और ग्वार में यह क्रमशः 93 और 229 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष दर्ज की गई।

मृदा अपरदन के मापन उपकरण

वायु अपरदन की घटनाओं के दौरान वायुमंडल में उत्पन्न वातज तलछट भार को आमतौर पर विभिन्न प्रकार के नमूना उपकरणों जैसे नमूना संग्रहक, जाल, और कैचर के माध्यम से मापा जाता है। पश्चिमी राजस्थान में, धूल पकड़ने वाले और वायु अपरदन के नमूने संग्रहक का उपयोग ज्यादातर वायु अपरदन के कारण हुई मृदा हानि को मापने के लिए किया जाता है (चित्र 2)। सैद्धांतिक रूप में, मृदा हानि की दर को भू सतह स्तर से 2 मीटर तक की ऊँचाई तक विभिन्न अंतरालों पर मापा जाता है, एवं जिसे मृदा हानि की कुल मात्रा प्राप्त करने के लिए एकीकृत किया जाता है।

मृदा अपरदन का वातावरण पर प्रभाव

वायु अपरदन की घटनाओं के दौरान उत्सर्जित धूल वायुमंडलीय एरोसोल में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इस प्रकार का एरोसोल, अन्य एरोसोल उत्पादों जैसे सल्फेट एरोसोल, कार्बोनेसियस एरोसोल, समुद्री लवण आदि के साथ मिलकर ऊपरी वातावरण, विशेष रूप से क्षोभमंडल, में धुंध की एक विशाल चादर सृजित करता है। पश्चिमी राजस्थान में वायु अपरदन द्वारा उत्सर्जित धूल भरी तीव्र आंधी उत्तर भारत में गंगा के मैदानी इलाकों की ओर भी पहुँच जाती हैं। धूल एरोसोल के क्षेत्रीय परिवहन को 14 दिसम्बर 2003 (चित्र 3ए) एवं 10 जून 2005 (चित्र 3बी) को मोडिस उपग्रह द्वारा प्राप्त छवि में स्पष्ट रूप से देखा गया। ये छवियाँ अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान से एशिया के थार रेगिस्तान तक अंतरमहाद्वीपीय धूल परिवहन को भी दर्शाती है।

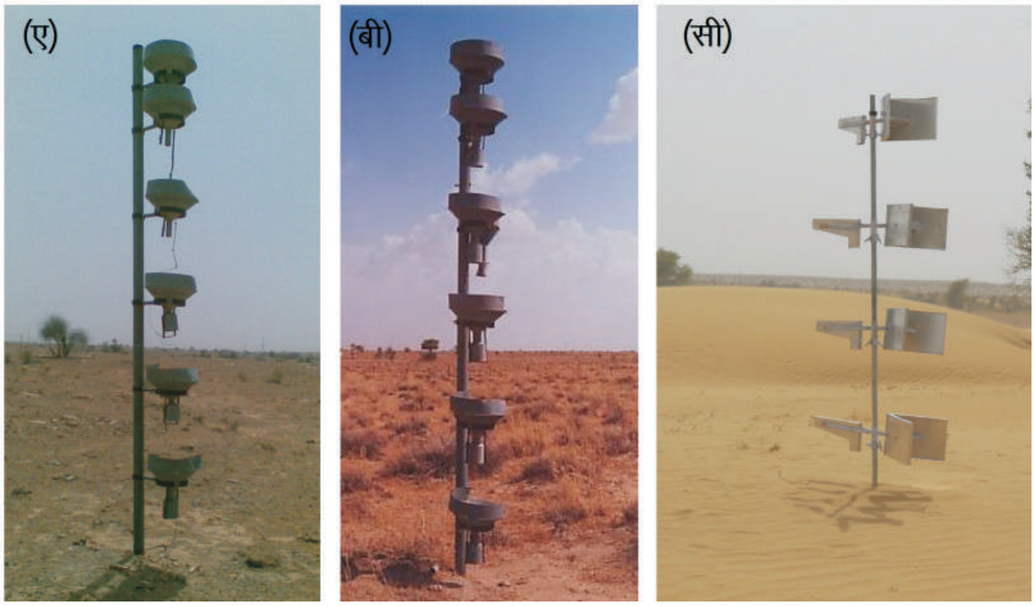

चित्र 2 : पश्चिमी राजस्थान में वायु अपरदन के कारण मृदा हानि दर को मापने के लिए कैचर (ए और बी) एवं नमूना संग्रहक (सी)

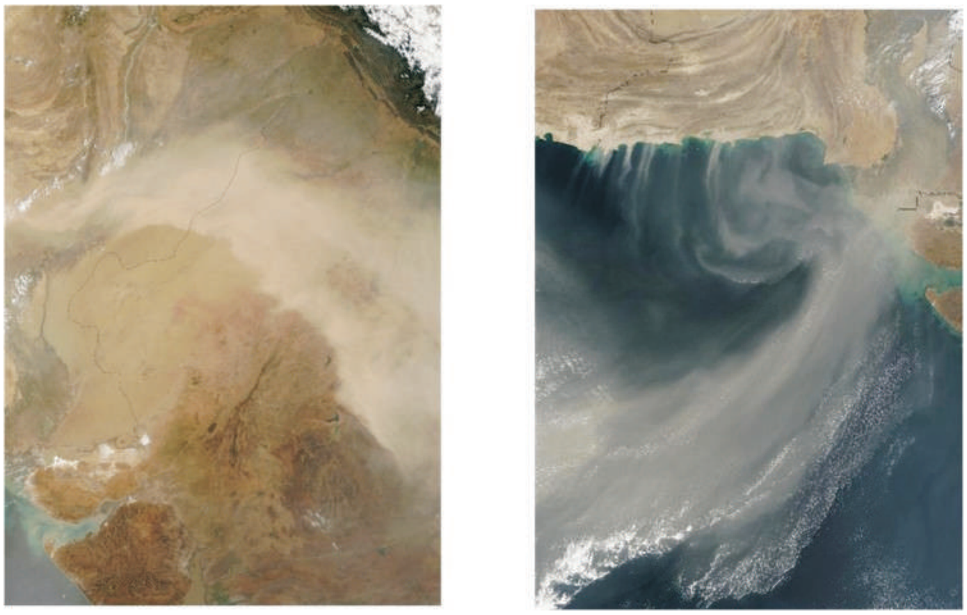

चित्र 3 थार रेगिस्तान के स्रोत क्षेत्र से ईन्दोगंजेटिक प्लेन तक और अंतरमहाद्वीपीय धूल परिवहन की मोडिस उपग्रह द्वारा प्राप्त छवियां (ए) 14 दिसंबर 2003 (बी) 10 जून 2005

मृदा अपरदन नियंत्रण प्रौद्योगिकियाँ

मृदा अपरदन को दो प्रमुख तरीकों से नियंत्रित किया जा सकता हैः मृदा क्षरण को कम करना अथवा वायु के मार्ग में अवरोध पैदा करके वायु की क्षरण ऊर्जा को कम करना। इसे विभिन्न मृदा संरक्षण विधाओं के उपयोग के माध्यम से पूरा किया जा सकता है यथा (1) क्षेत्र की चौड़ाई कम करना, (2) मृदा सतह पर वानस्पतिक आवरण प्रदान करना, (3) वायु के प्रतिरोध के लिए स्थिर मृदा के समुच्चय या ढेले का उपयोग, (4) मेड़ का निर्माण करना, और (5) भूमि की सतह को समतल करना। चेकरबोर्ड विधि अपनाकर वनस्पति आवरण द्वारा रेतीला टिब्बा स्थिरीकरण, एक लोकप्रिय मृदा अपरदन नियंत्रण तकनीक है। वायु अपरदन को नियंत्रित करने के लिए सतही आवरण का उपयोग दो प्रकार से हो सकता है, वनस्पति और गैर—वनस्पति। घास या फसलों के वानस्पतिक सतह आवरण के माध्यम से भू—सतह की सुरक्षा सबसे प्रभावी, आसान और किफायती विधि है। खड़ी वनस्पति के अलावा, फसल अवशेषों को प्रायः मृदा पर कृत्रिम रूप से रखा जाता है ताकि स्थायी वनस्पति के स्थापन तक अस्थायी आवरण प्रदान किया जा सके। वानस्पतिक आवरणों के अलावा, विभिन्न सतह की फिल्में जैसे राल—इन—वाटर इमल्शन (पेट्रोलियम मूल), रैपिड क्योरिंग कटबैक डामर, डामर—इन—वाटर इमल्शन, स्टार्च यौगिक, लेटेक्स इन वॉटर इमल्शन (इलास्टोमेरिक पॉलीमर इमल्शन), के उप—उत्पाद, पेपर पल्प उद्योग और लकड़ी सेलुलोज रेशों का उपयोग मृदा अपरदन को नियंत्रित करने के लिए किया जा चुका है, जिसका मुख्य उद्देश्य मृदा क्षरण को कम करना है। रक्षक पट्टियों में पेड़ों या झाड़ियों के अवरोधक वायु गति को कम करने और अपरदन को रोकने के लिए लगाए जाते हैं। वे प्रायः कृषि फसलों को प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उच्च पैदावार होती है, और साथ ही पशुधन, चराई भूमि और खेतों को आश्रय प्रदान करते हैं। आश्रय क्षेत्र में उपयोग किए जाने वाले पेड़ों, झाड़ियों और शाकीय पौधों की प्रजातियों का चयन प्रभावी आश्रय (चित्र 4) प्राप्त करने हेतु तय की गई ऊँचाई और पौधे की वितानसरंध्रता के अनुसार करना चाहिए।

रक्षक पट्टियाँ जब हवा की दिशा में और खेत की सीमाओं पर लगाते हैं, तो ये प्रभावी रूप से फसलों की रक्षा करती हैं और साथ ही रेत के बहाव को नियंत्रित करती हैं। वायु गति को कम करने में रक्षक पट्टियों की प्रभावशीलता वायु गति और दिशा और पेड़ के आकार, चौड़ाई, ऊँचाई और घनत्व पर निर्भर करती है।

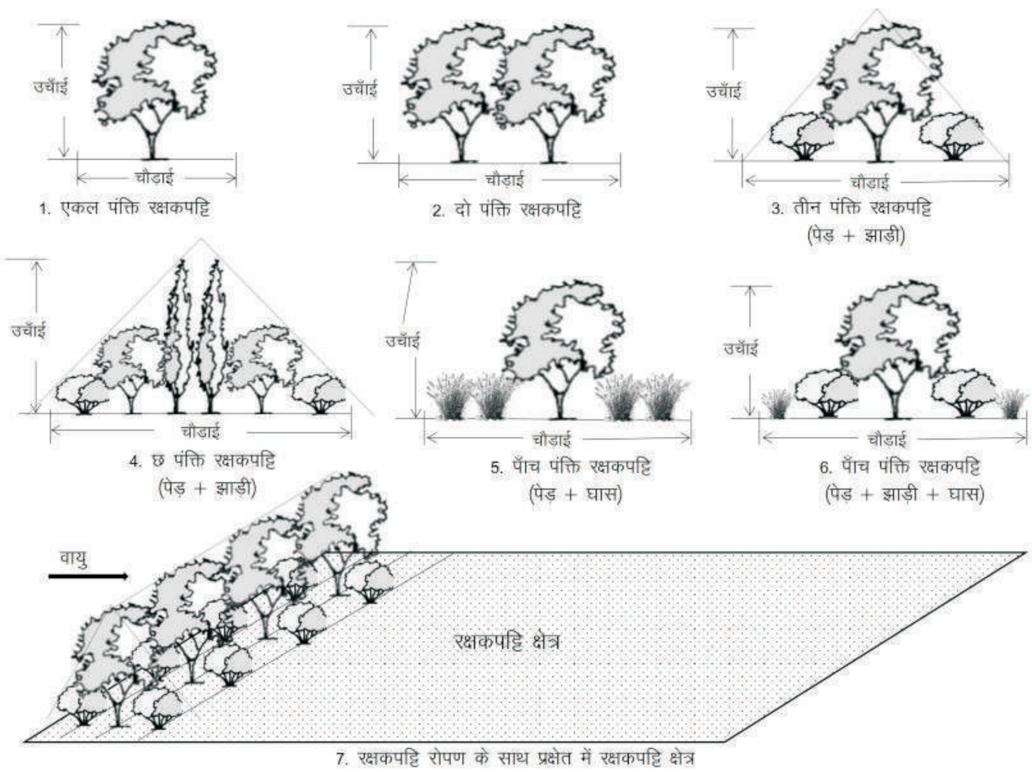

चित्र 4: वृक्षों, झाड़ियों और घासों से बने रक्षक पट्टियों का योजनाबद्ध आरेख

निष्कर्ष

वायु अपरदन विश्व के उष्ण और शीत दोनों क्षेत्रों में भू–क्षरण की एक प्रमुख प्रक्रिया है। वायु अपरदन प्रक्रिया के तंत्र में मुख्य रूप से चार बुनियादी चरण शामिल हैं यथा (1) वायु बल द्वारा मृदा कणों की गति की शुरुआत, (2) मूल रूप से तीन तरह (निलंबन, लवण और सतह रेंगना) से गतिमान कणों का परिवहन, (3) परिवहन कणों की छंटाई, और (4) गतिशील मृदा द्वारा घर्षण कण, जो आगे क्षरण प्रक्रिया को प्रेरित करते हैं। प्रारम्भ में वायु द्वारा सभी कण दूर के स्थानों पर जमा हो जाते हैं और इस प्रकार स्रोत क्षेत्र को प्रभावित करते हैं जिससे इस मृदा की उर्वरता कम हो जाती है और जमा क्षेत्रों में पर्यावरणीय खतरे पैदा हो जाते हैं। कभी–कभी, स्रोत क्षेत्र से दूर स्थानों में पोषक तत्वों से समृद्ध मृदा के कणों के क्षरण से उर्वरता में वृद्धि होती है। क्षेत्र माप से गणना की गई मृदा हानि से पता चला है कि जैसलमेर में 12.2 टन प्रति हेक्टेयर की मृदा हानि की वार्षिक दर से मृदा का मध्यम श्रेणी अपरदन हुआ, जबकि जैसलमेर के खुइयाला गाँव में यह 83.3 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष जितनी अधिक थी, जो बहुत तीव्र श्रेणी में थी। वायु अपरदन प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले पाँच मुख्य कारक हैं, (1) जलवायु, (2) मृदा क्षरण, (3) खुरदरापन, (4) क्षेत्र की लंबाई और (5) वनस्पति। इन कारकों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न नियंत्रण उपायों को तैयार किया गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य या तो वायु क्षरण ऊर्जा को कम करना या सतह मृदा की विशेषताओं या सतह के आवरण या खुरदरापन को बदलकर मृदा क्षरण को कम करना है। विभिन्न नियंत्रण उपायों में, मृदा अपरदन को नियंत्रित करने के लिए अच्छी तरह से लंगर वाली सतह वनस्पति आवरण सबसे अधिक प्रचलित विधि है, जिसे रेंजभूमि में स्थायी घास के आवरण को बनाए रखने के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। रक्षक पट्टियाँ रोपण रेगिस्तान के उन स्थानों में मृदा अपरदन को नियंत्रित करने के लिए भी एक उपयुक्त विकल्प हैं जहाँ इसक प्रारंभिक स्थायित्वकरण के लिए पर्याप्त जल संसाधन उपलब्ध हैं।

★ ★ ★

वनस्पति क्षरण: वर्तमान स्थिति तथा इसके नियंत्रण हेतु भावी रणनीतियाँ

जे.पी. सिंह[1] एवं सुरेश कुमार[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

प्रस्तावना

भारतीय मरूस्थल की प्राकृतिक वनस्पतियाँ छितरे वितरण को दर्शाती हैं, यह अधिकांशतः दो कारणों से है, एक तो इसकी जलवायुवीय दशाएँ (जैसे कि कम एवं अनियमित वर्षा, तापक्रमों की पराकाष्ठा, कम आर्द्रता तथा उच्च वायुवेग) तथा दूसरे मरूस्थलवासियों द्वारा वनस्पतियों में आच्छादन का विशाल पैमाने पर विदोहन किया जाना है। भारतीय मरूस्थलीय वनस्पतियों में जो पारिस्थितिक बदलाव हो रहा है वह जैविक प्रभावों के कारण है। चराई भूमियों पर पशुधन के बढ़ते चराई दबाव के परिणामस्वरूप वानस्पतिक संसाधनों में गिरावट हुई। साथ ही कुछ मरूस्थलीय परिवेशों में प्राकृतिक अनुक्रमण का प्रक्रम (ट्रेंड) परिवर्तित हुआ है। इसके साथ ही मानव जनसंख्या का बढ़ना विशेषकर मरूस्थल के वानस्पतिक संसाधनों पर एक गंभीर तनाव उत्पन्न करता है। ऐसा देखा गया है कि वृक्ष तथा झाड़ियों को ग्रामीणों द्वारा ईंधन, शीर्षभोज्य चारा, बाड़ तथा झोपड़ियों की निर्माण सामग्री हेतु अंधाधुध काटा जाता है, यहाँ तक की इनकी जड़ों को भी निकाल दिया जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि जलाऊ ईंधन तथा लघु काष्ठ की बढ़ती आवश्यकता, शीर्ष भोज्य के रूप में छंगाई तथा अंधाधुंध चराई से वनस्पति संसाधनों पर दबाव कई गुना बढ़ा है। वर्तमान में जो वनस्पतियाँ हैं वह जैविक कारकों के कारण बहुत ही क्षीण दशा में हैं।

मरूस्थलीय वनस्पतियों में प्रजातियों की प्रधानता

भारतीय शुष्क मरूस्थलीय वनस्पतियों में काफी विविधता देखने को मिलती है। मरूस्थलीय पादपजात (फ्लोरा) की दृष्टि से पादप प्रजातियों में अधिकांशतया (लगभग 49 प्रतिशत) ऋतूदभिदों (थीरोफाइट) की प्रभाविता है तथा कुछ उम्मृदोद्भिद् (फेनरोफाइट) भी सम्मिलित है। ऋतूद्भिद् संख्या में अधिक हैं क्योंकि ये पादप सूखे से बचाव कर लेते हैं, अर्थात ये प्रजातियाँ नमी की उपलब्धता की कम अवधि में अपना जीवन चक्र पूरा करती हैं। बहुवर्षीय प्रजातियों में, झाड़ियाँ अरावली से लेकर थार मरूस्थल के भारतीय भाग की पश्चिमी सीमा तक लगभग 70 प्रतिशत से अधिक परिदृश्य को आच्छादित करती हैं। झाड़ियों की प्रधानता उनकी बहु–तना प्रकृति से वजह से होती है जो उन्हें मरूस्थल में तेज हवाओं का सामना करने देती है। झाड़ियों में मृदा नमी प्राप्ति के लिए मूसला और रेशेदार दोनों की प्रकार की जड़ें होती हैं जो जीवित रहने के लिए बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जैसे ही हम अरावली से पश्चिम की ओर बढ़ते हैं, काष्ठीय बहुवर्षीय किस्मों की प्रधानता, घनत्व, आच्छादन और ओज में गिरावट आती है तथा बहुवर्षीय घास और एकवर्षीय पादपों की विविधता, आच्छादन और ओज में बढ़ोतरी होती है।

थार मरूस्थल में विभिन्न आवासीय परिवेशों में विशिष्ट पादप समुदाय पाये जाते हैं मरूस्थलीय वनस्पतियाँ कुछ हद तक परिसीमित सीमा के साथ स्तरण (स्ट्रेटीफीकेसन) दर्शाती हैं जैसे कि वृक्ष (5 से 6 मीटर), झाड़ियाँ (2 से 4 मीटर), उपक्षुप (1 से 2 मीटर), घासें (0.5 से 1 मीटर) एवं अन्य शाकीय पौधे (0.1 से 0.7 मीटर) तथा ये सभी प्रकार विभिन्न अनुपातों में मिलते हैं।

पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में वृक्षों में खेजड़ी–मीठाजाल–बबूल प्रजातियों की प्रधानता है तो झाड़ियों में प्रमुख रूप से कैर, फोग, बोर्डी और आक प्रमुख

[1]प्रधान वैज्ञानिक

हैं। छोटी झाड़ियों में सीनिया तथा बुई की प्रमुखता देखने को मिलती है जबकि बहुवर्षीय घासों में धामण, सेवण और करड़ प्रजातियाँ प्रमुख हैं।

वृहत–स्तर पर जलवायुवीय चरम और मृदा (एडैफिक) कारक एक विशेष प्रजाति के पाये जाने के प्रमुख निर्धारक हैं। इन कारकों ने ऐसी कठोर जलवायु परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए पौधों में अनुकूलन को प्रेरित किया है। अनुकूलन के कुछ उदाहरणों में कांटों का विकसित होना, वर्षा प्रेरित जीवन चक्र का सहारा लेना, जड़ स्टॉक को बनाए रखना, जैव रासायनिक यौगिकों जैसे कि लैटेक्स, गोंद, रेजिन का विकास, रसीलापन, पत्तियों पर मोमी आवरण (वेक्सी कोटिंग), बीजों की दीर्घ जीवन अवधि, विखरित सुप्तावस्था, वाष्पोत्सर्जन सतह में कमी, सूखे की अवधि के दौरान पत्तियों का झड़ना प्रमुख हैं।

वनस्पति संघटन और इसका वितरण

वनस्पति संघटन और इसका विद्यमान वितरण वर्षा का प्रतिबिंब है, जो कि वर्षा के प्रक्रम से बहुत अच्छी तरह से संबंधित है। भारतीय उष्ण शुष्क क्षेत्र में अक्षरित एवं क्षरित दशाओं में वनस्पतियों के प्रकार को तालिका 1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1 भारतीय उष्ण शुष्क क्षेत्र में अक्षरित एवं क्षरित दशाओं में वनस्पतियों का प्रकार

वार्षिक वर्षा (मि.मी.)	मुख्य क्षेत्र	परिवेश	घास आच्छादान प्रकार	संबंधित शाकीय प्रजातियाँ		संबंधित काष्ठीय प्रजातियाँ	
300 से 400	श्रीगंगानगर, नागौर, दक्षिण पूर्वी सीकर, पाली, जालौर, सिरोही के हिस्से	दोमट, चिकनी, बलुई दोमट	करड़–दाब	दूब, झरनियो, मुरट, कागिया /चिंकी	लम्पा, बेकरिया, पीलो बेकरिया, जोरिना गिबोसा	देसी बबूल, खेजड़ी, हिंगोट, कैर, मीठा जाल	जींजवा, अंवल, आक, सीनिया
	नागौर, जोधपुर, पाली, जालोर, सिरोही	बलुई दोमट जलोढ़	टांटिया– करड़–दाब	बुरेरो, बुआरी, बेकरिया, इराग्रोसिटस माइनर	लम्पा, भूरट, गठिया, ट्रेगस बाइफलोरस	खेजड़ी, मीठा जाल, कैर	टाक, बंवल, जील सीनिया
100 से 450	सम्पूर्ण शुष्क भूमि में लवणीय क्षेत्र	लवणी चिकनी दोमट	खारीघास – करड़	छोटा अरनिया, बुकन, रूदंति, दूब, टाटियां, मोथा प्रजाति	बुकन, रूदंति, सुरशिया	मीठा जाल, बबूल, फराश/झाउ	विलायती बबूल, जील
300 से 400	सीकर, नागौर, चूरू, झुंझुनू	बलुई, बलुई दोमट, पुराने एवं स्थिर टीबें	कांस–मूंज	दाब, धामण प्रजाति	लम्पा डेक्टाइ लोक्लिनम प्रजाति बेकरिया	खेजड़ी–बूबावली	सेरिकोस्टिोमा पेएसीफ लोरम, बुई, सीनिया
250–350	चूरू, झुंझुनू, सीकर, नागौर का हिस्सा, पाली, जोधपुर	मैदानी बलुई दोमट	मोडाधामन – अंजन	टांटिया इराग्रास्टिस प्रजाति	भुरट, लम्पा	खेजड़ी, बबूल	आक, सीनिया, बुई

वार्षिक वर्षा (मि.मी.)	मुख्य क्षेत्र	परिवेश	घास आच्छादान प्रकार	संबंधित शाकीय प्रजातियाँ		संबंधित काष्ठीय प्रजातियाँ	
200 या कम	बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, पश्चिमी नागौर	बलुई रेत	सेवण	टांटिया, बेकरिया, बाकड़ा	लम्पा, भुरट, चिरयोरेखेत	खेजड़ी, रोहिड़ा, फोग, बोर्डी	सीनिया, मुराल, फेक
125 से 150	बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर, जालौर एवं नागौर के हिस्से	स्थिर पुराने टीले लेकिन चलायमान सतह	सेवण – मुरठ	बुर साईप्रस प्रजाति	लम्पा, गंठिया	खेजड़ी–फोग	फेक, मुराल
150 से 300	जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर	रेतीले–कंकरीले मैदान	गांठिया – तातिंया	लम्पा, कांटी (छोटा गोखरू)	सुरशिया, लम्प बियानी प्रजाति	खेजड़ी – जाल, कैर, रेउंजा	बज्रदंती, धंसारा,
150 से 350	पाली, जालोर, जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, सिरोही	पहाड़ी इलाके लवणीय छोड़कर सभी प्रकार की मृदा	लम्पा इराग्रोस्टिस प्रजाति	सुरशिया	सुरशिया	कैर, जाल	विलायती बबूल

वनस्पति आच्छादन में बदलाव

पश्चिमी राजस्थान में चराई एक प्रमुख भू–उपयोग है और इसका विभिन्न तरीकों से वनस्पति संरचना और विविधता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है, जो कि चरने वाले पशु प्रजाति के प्रकार और चराई की तीव्रता पर निर्भर करता है। इसलिए, बढ़े हुए पशुधन दबाव ने विशेष रूप से चराई वाली भूमि में वनस्पति की संरचना को उच्च से कम खाद्य प्रजातियों के साथ–साथ उनके कम शाकीय/चारा उत्पादन में बदल दिया है। उदाहरण के लिए अत्यधिक चराई और विशेष रूप से सूखे और कमी की अवधि के तहत, सेवण चरागाह इतने विकृत हो जाते हैं कि उनमें केवल कुछ वार्षिक पादप जैसे लम्पा और बेकरिया आदि की प्रधानता हो जाती है (तालिका 2)। जैसलमेर जिले के चारागाहों/रेंजभूमियों में फेक नामक खरपतवार प्रजाति की प्रधानता हो गयी है (चित्र 1) तथा इसका आच्छादान बढ़ता जा रहा है। इसके अलावा, भू–उपयोग प्रक्रम में बदलाव/सिंचाई के कारण चरागाहों का फसल भूमि में परिवर्तन, विशेष रूप से जैसलमेर जिले में उच्च मूल्यवान वाले सेवण और मुरठ चरागाहों (चित्र 2) को भी गंभीर रूप से प्रभावित करता है विशेषकर इन चारागाहों में पनपती पिम्पा प्रजाति का अस्तित्व खतरे में है। इसके साथ ही काष्ठीय बहुवर्षीय प्रजातियों का अत्यधिक दोहन एवं अधिक पल्लव दबाव, प्रमुख शुष्क झाड़ियों जैसे फोग की जड़ों को काटने और निष्कासन ने भी वनस्पति संरचना और पादप विविधता को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।

मरू वनस्पतियों में पारिस्थतिक बदलाव

वनस्पतियों में वृहत–स्तर पर विदोहन अनेक प्रकार से अपना प्रभाव छोड़ता है जैसे कि (1) वृक्ष व झाड़ियाँ प्रायः विकृत हो जाती हैं तथा क्षुपीय रूप ले लेती हैं, (2) स्वस्थ प्रजनक (प्रोपगल) का उत्पादन बहुत कम हो पाता है, (3) चराई भूमि में अखाद्य प्रजातियों की प्रभाविता हो जाती है, (4) लगातार क्षतियों के कारण घासें, वृक्ष, झाड़ियाँ बहुत अधिक प्रभावित होती हैं, (5) पशुओं के विशाल झुंडों

तालिका 2 मरूस्थलीय घास आवरणों का वानस्पतिक आच्छादन तथा उनकी उत्पादकता

घास आवरण प्रकार	प्रतिशत आच्छादन		उत्पादकता (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर)	
	विकसित	क्षरित	विकसित	क्षरित
सेवण	5–14	2–4	4000	400–500
सेवण–भुरट	5–8	2–3	1500–2000	300–450
लापडा–चिड़ीघास–भुरट	2–3	0.1–1	500–800	100–200
गांठिया–तातिंया	3–4	0.5–2	800–1000	175–450
मोड़ाधामन–धामन / अंजन	4–6	1–2	2000–2500	300–400
करड़–दाब	4–8	0.5–2	4000	130–1000
गांटिया–करड़–दाब	3–9	0.5–2	1200–1500	100–600
खारीघास–करड़	4–7	1–3	1400–2600	300–500
मूंज–कांस घास	4–7	1–3	1400–2600	300–500

चित्र 1 जैसलमेर जिले की रेंजभमि में फेक प्रजाति की प्रभाविता

चित्र 2 जैसलमेर जिले में मुरठ चारागाहों का खेती हेतु रूपांतरण

के गमनागमन के कारण जो मध्यम भारी से भारी मृदाएँ हैं वे ठोस हो जाती हैं जिससे बीजांकुरण में बाधा पहुँचती हैं तथा रेतीली मृदाऐं शिथिल हो जाती है जो कि तेज चलने वाली हवाओं के साथ उड़ जाती है, तथा (6) जो चरम पादप समुदाय हैं वे अत्यधिक क्षरित अवस्था में बदल जाते हैं।

नियंत्रण हेतु भावी रणनीतियाँ

1. क्षीण परिवेशों का अंतः बाड़ों (एंक्लोजर) द्वारा रक्षण:

वनस्पतियों को विकसित करने तथा उनके वैज्ञानिक ढंग से उपयोग करने हेतु क्षीण परिवशों का अंतः बाड़ों (एंक्लोजर) द्वारा कुछ अवधि के लिए रक्षण करना बहुत महत्वपूर्ण पाया गया है। क्षीण परिवेशों का यह रक्षण तब तक करना आवश्यक है जब तक कि वनस्पति उस स्थिति तक विकसित न हो जाये कि उसका पुनः उपयोग किया जा सके। पश्चिमी राजस्थान के विभिन्न वर्षा क्षेत्रों में जहाँ कि काजरी संस्थान के शोध क्षेत्र अवस्थित थे, प्राकृतिक पुर्नयोजन की कुछ कालिक सीमाओं को आठ मरूस्थलीय परिवेशों यथा 1. रेतीली पहाड़ियाँ, 2. शैलीय, बजरीले पेडिमेंट्स 3. समतल अंतर्हित पेडिमेंट्स, 4. रेतीले लहरदार अंतर्हित पेडिमेंट्स, 5. समतल अधिवृद्धित पुराने जलोढ़

मैदान, 6. रेतीले लहरदार अधिवृद्धित पुराने जलोढ़ मैदान, 7. बालु के टिब्बे तथा 8. छिछले लवणीय अवसाद पर पारिस्थितिक पुनर्योजन के लिय अध्ययन किया गया। यह पाया गया कि यदि क्षरित क्षेत्र से जैविक प्रभाव को हटा दिया जाए तो मरूस्थलीय परिवेश पुनर्योजन के लिए अत्यधिक लचीलापन दिखाते हैं। रक्षण की जो अनुशंसित अवधि है कम से कम 5 वर्ष समलत अधिवृद्धित पुराने जलोढ़ मैदान में धामन–खेजड़ी–बोर्डी तथा कैल–रेउंजा–बबूल के लिए पाली व सिरोही जिलों में तथा लगभग 15 वर्ष की रक्षण अवधि पहाड़ी भूमि पर जोधपुर जिले के कायलाना में कूमट–लम्पा अवस्था प्राप्त करने के लिए पायी गई। इस प्रकार मरूस्थलीय परिवेशों में क्षरित वनस्पतियों का रक्षण सामान्य बंतःक्षेत्रों (बाड़ों) से किया जा सकता है जो कि स्थिर घास आच्छादन में सुधार के साथ पुनर्योजन को संचालित करता है।

रोपण कार्यक्रम में स्थानीय पादप प्रजातियों को प्राथमिकताः बालू के टीलों के स्थिरीकरण और जलाऊ लकड़ी के वृक्षारोपण कार्यक्रम में मुख्यतया दो वृक्ष प्रजातियों यथा ईजराइली बबूल और विलायती बबूल को प्राथमिकता दी गयी है। वृक्षारोपण कार्यक्रमों में देशी प्रजातियों जैसे खेजड़ी, रोहिड़ा, मीठा जाल आदि का प्रमुखता से उपयोग नहीं किया गया है। यह आवश्यक है कि परिवेशानुसार अनुकूलित देशज प्रजातियों को रोपण कार्यक्रमों में समुचित स्थान दिया जाये जिससे वनस्पति आच्छादन तो बढ़ेगा ही साथ ही स्थानीयवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सकेगी। साथ ही कार्बन जब्तिकरण में भी पर्यावरणीय योगदान होगा।

रेंजभूमियों में जलाऊ ईंधन महत्व की काष्ठीय प्रजातियों का रोपणः मानव आबादी में बढ़ोतरी से ईंधन के लिए जलाऊ लकड़ी की माँग बढ़ने के फलस्वरूप बहुवर्षीय काष्ठीय वनस्पति संसाधनों का अत्यधिक विदोहन हुआ। वनस्पति क्षरण में बहुवर्षीय वनस्पति आच्छादन विशेषकर झाड़ी आच्छादन की क्षति एक प्रमुख कारण है जिसमें ईंधन हेतु काष्ठ का निकालना वनस्पतियों पर उल्लेखनीय प्रभाव डालता है, क्योंकि फोग जैसी कुछ प्रजातियों को जड़ से ही निकाल दिया जाता है। यदि रेंजभूमियों में फोग, लाणा, बावली आदि झाड़ी प्रजातियों के रोपण द्वारा पर्याप्त सुरक्षा की जाती है तो वनस्पति आच्छादन भी बढ़ेगा और साथ ही जलाऊ ईंधन की सुचारू आपूर्ति की जा सकती है।

जन सहभागिता कार्यक्रम का आयोजनः हमें यह भली–भांति समझना होगा कि प्राकृतिक संसाधनों, जिसमें वानस्पतिक आच्छादन भी सम्मिलित है, का संरक्षण पूर्णरूप से तभी अधिक प्रभावी हो सकता है जब प्रत्येक मरूस्थलवासी यह महसूस करें कि हमारे अस्तित्व के लिये वानस्पतिक आच्छादन कितना महत्वपूर्ण है और इसके क्षरण के दीर्घकालीन क्या प्रतिकूल परिणाम होंगे। यहाँ कुछ समुदाय प्राकृतिक संसाधनों का कुशल प्रबंधन भी करते रहे हैं। वर्तमान में सतत् विकास के जो पारिस्थितिक मुद्दे हैं वे सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक आयामों से जुड़े हुए हैं। अतः स्थानीय समुदायों की रोपण कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी की जरूरत है, जिससे वैज्ञानिक व स्थानीय समुदाय के मध्य उनमें अभिनव ज्ञान व विचारों का आदान–प्रदान हो सके।

उपसंहार

मानव एवं पशुधन आबादी का निरंतर बढ़ना विशेषकर मरूस्थल के वानस्पतिक संसाधनों पर एक गंभीर तनाव उत्पन्न करता है। विगत दशकों में बहुवर्षीय काष्ठीय प्रजातियों के अत्यधिक विदोहन से वनस्पति क्षरण हुआ, जो कि मरूस्थलीकरण प्रक्रियाओं को आरम्भ करने में प्रमुख महत्व रखता है। वृक्ष तथा झाड़ियाँ, यहाँ तक की इनकी जड़ों को भी ईंधन, शीर्षभोज्य, बाड़ तथा झोपड़ियों की निर्माण सामग्री हेतु अंधाधुध काटा जाता है। चराई भूमियों पर पशुधन के अधिक चराई दबाव के परिणामस्वरूप वानस्पतिक संसाधनों में गिरावट आई है, जिससे रेंजभूमियों में अवांछित प्रजातियों की प्रधानता हो गयी है। शुष्क क्षेत्र में वनस्पतियों को विकसित करने, वनस्पति आच्छादन को बढ़ाने तथा उनके वैज्ञानिक ढंग से उपयोग करने की आवश्यकता है। इस महत्वपूर्ण कार्य हेतु स्थानीय समुदायों की सक्रिय सहभागिता की महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी।

परिशिष्टः

स्थानीय नाम	वानस्पतिक नाम	स्थानीय नाम	वानस्पतिक नाम
		पेड़	
बबूल	*एकेसिया निलोटिका*	*ईजराइली बबूल*	*एकेसिया टॉर्टिलिस*
खेजड़ी	*प्रोसोपिस सिनिरेरिया*	*कूमठ*	*एकेसिया सेनेगल*
मीठा जाल	*सल्वाडोरा ओलियोइड्स*	*रेउंजा*	*एकेसिया ल्यूकोफ्लोआ*
रोहिड़ा	*टेकोमेला अंडुलाटा*	*विलायती बबूल*	*प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा*
		झाड़ियां	
आक	*कैलोट्रोपिस प्रोसेरा*	*अवंल*	*केसिया एरिकुलेटा*
बावली/बुईबावली	*एकेसिया जेकमोंटाई*	*बोर्डी*	*जिजिंस न्यूमुलेरिया*
धंसारा	*रूस माइसोरेंसिस*	*हिंगोटा*	*बेलेनाइटस एजेप्टिका*
बुई	*एरवा जवेनिका*	*कैर*	*कैपेरिस डेसीडुआ*
फोग	*कैनिगोनम पॉलीगोनोइड्स*	*लाणा*	*हेलोक्जिलोन सेलिकोर्निकम*
जींजणी	*माइमोसा हमाटा*	*जील*	*अंडिगोफेरा ओबलोंजिफोलया*
मुराल	*लाईसम बारबेरम*	*सीनिया*	*क्रोटोलेरिया ब्रुहआ*
झाउ	*टेमेरिक्स एफाल्ला*		
		घासें	
अंजन/धामण	*सेंक्रस सिलिएरिस*	*बुर/बुरेरो*	*सिम्बोपोगोन ज्वरनकुसा*
बुआरी	*झरेमोपोगोन फोवयोलेटस*	*बुकन*	*एलयूरोपस लेगोपाआइडिस*
भुरट	*सेंक्रस बाइफलोरस*	*छोटी एरनियो*	*क्लोरिस विरगाा*
दाब	*डेसमोस्टेकया बाईपिन्नाटा*	*दूब*	*साइनोडोन डेक्टाइलोन*
गठिया	*डक्टाइलोक्लीनम सिंडिकम*	*करड़*	*डाईकेंथियम एनुलेटम*
कांस	*सेकेरम स्पोंटेनियम*	*कगियो/चिंकी*	*टेट्रापोगोन टेनेलस*
खारा घास	*स्पोरोबालस आयोक्लेडस*	*झरनियो*	*डिजिटेरिया सीलिएरिस*
लम्पा	*अरिस्टिडा एडसेन्सिस, अरिस्टिडा फनिकुलाटा*	*लम्प*	*अरिस्टिडा म्यूटाबिलस*
मोडा धामन	*सेंक्रस सेटिजिरस*	*मुरठ*	*ब्रेकेरिया रेमोसा*
मुरठ	*पेनिकम टर्जिडम*	*मूंज*	*सेकेरम बेंगेलेंस*
सेवण	*लेसूरस सिंडिकस*	*सुरशिया*	*ओरोपिटम थोमियम*
टांटिया	*ओक्थेक्लोआ कमप्रेसा*		
		शाकीय पौधे	
बज्रदंती	*बारलेरिया प्राईनाइटिस*	*बांकड़ा*	*ट्रिबुलस पेंट्रेंड्स*
बेकरिया	*इंडिगोफेरा लिनिफोलिया*	*बियानी*	*टेफरोसिया प्रजाति*
चिरयो रे खेत	*मेलुगो सेरिविना*	*कांटी/गोखरू*	*ट्रिबुलस टेरेस्टिरिस*
फेक/फेल	*डिप्टेरीजयम ग्लकम*	*मोथे/चिया*	*साईप्रस ऐरेनियस*
पिम्पा	*केरेलूमा इडयूलिस*	*पीलो बेकरियो*	*गेनोगाइना हिरटा*
रूदंति	*क्रेसा क्रेटिका*		

★ ★ ★

शुष्क क्षेत्र में भू–क्षरण नियंत्रण हेतु मृदा एवं जल संरक्षण युक्तियाँ

दीपेश माचीवाल[1]

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

भू–क्षरण को मृदा की उत्पादकता और इसकी पर्यावरण को नियंत्रित करने की क्षमता में दीर्घकालिक गिरावट के रूप में परिभाषित किया गया है। वैश्विक स्तर पर मानव–प्रेरित मृदा के क्षरण से लगभग 2 बिलियन हेक्टेयर भूमि क्षेत्र प्रभावित है। विश्वभर में जल और वायु द्वारा कटाव के कारण मृदा का क्षरण क्रमशः 1100 और 550 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में अनुमानित है। खाद्य और कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.), रोम के नेतृत्व वाली वैश्विक मृदा भागीदारी की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि विश्व में कृषि योग्य भूमि से सालाना 75 बिलियन टन मृदा का क्षरण होता है, जिसके परिणामस्वरूप सालाना 400 बिलियन अमेरिकी डॉलर का मौद्रिक नुकसान होता है। वर्तमान परिदृश्य में वैश्विक–स्तर पर मृदा क्षरण के विश्वसनीय आंकड़ों के अनुमानों की कमी या सतर्कता के चलते वैज्ञानिक समुदाय को 1990 के दशक की शुरुआत में किए गए अग्रणी अध्ययनों का सहारा लेने के लिए मजबूर करता है। भारत में, लगभग 120.72 मिलियन हेक्टेयर भूमि क्षेत्र भू–क्षरण के अधीन है, और इसका एक बड़ा हिस्सा (68 प्रतिशत) जल द्वारा होने वाले मृदा क्षरण के अन्तर्गत आता है। यद्यपि देश में मृदा के कटाव की समस्या पर बहुत ध्यान दिया गया है, अपितु क्षेत्रीय या राष्ट्रीय–स्तर पर मृदा क्षरण के कृषि उत्पादकता पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं हैं। भारतवर्ष में विभिन्न प्रकार की मृदाओं में अपरदन प्रक्रियाओं द्वारा सतही उपजाऊ मृदा की परत को हटाने और जल द्वारा कटाव के कारण कृषि उत्पादन में 13.4 मिलियन टन की वार्षिक हानि के कारण फसल की पैदावार में 60 प्रतिशत तक की कमी दर्ज की गई है, जो कि 2.51 बिलियन अमेरिकी डॉलर की हानि के बराबर है। भारत में औसत सकल मृदा क्षरण दर 1559 टन प्रति वर्ग कि.मी. प्रति वर्ष आंकी गई है, जिसमें से 34.1 प्रतिशत क्षरित मृदा जलाशयों में जमा हो जाती है, 22.9 प्रतिशत देश की भूमि से बाहर निकल कर मुख्यरूप से महासागरों में चली जाती है, और शेष 43.0 प्रतिशत नदियों की घाटियों के भीतर जमा हो जाती है। मृदा के अपरदन या क्षरण का फसलों की उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है, और साथ ही कृषक समुदाय की सामाजिक–आर्थिक स्थिति भी प्रभावित होती है। मृदा क्षरण का मृदा के पोषक तत्वों और फसल उत्पादकता पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है। कृषि भूमि से मृदा का क्षरण मृदा की जल धारण क्षमता को कम करता है, जिससे अंततः पौधों को जल की कम मात्रा उपलब्धता होती है और इससे फसल की पैदावार पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। फसल की पैदावार को प्रभावित करने वाले मृदा के कटाव के अन्य हानिकारक प्रभावों में पौधों के लिए पोषक तत्वों की कमी और जड़ों के बढ़ने हेतु स्थान की सीमितता शामिल हैं। जब मृदा की परत पर्याप्त मोटाई की होती है, तो उर्वरकों की बढ़ी हुई मात्रा डालकर मृदा के कटाव से हुए पोषक तत्वों की हानि की भरपाई की जा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप फसल की पैदावार में मामूली नुकसान ही होता है। इसके विपरीत, मृदा की सीमित गहराई वाले क्षेत्रों में कृषि उपज में अधिक हानि होती है।

शुष्क क्षेत्रों में अधिकांशतः भूमि में मृदा की गहराई कम होने की वजह से मृदा क्षरण द्वारा बड़ी मात्रा में मृदा के कणों एवं पोषक तत्वों की हानि होती है। कृषि भूमि से मृदा क्षरण की प्रक्रिया में सतह की ऊपरी या शीर्ष मृदा का अलग होकर और अन्यत्र परिवहन होना शामिल है। खनिजों और

[1]प्रधान वैज्ञानिक

पोषक तत्वों की उपस्थिति के कारण शीर्ष मृदा बहुत उपजाऊ होती है, और इसलिए, कटाव से मृदा के पोषक तत्वों की भी हानि होती है जिससे फसल उत्पादकता में कमी आती है। शुष्क क्षेत्रों में वर्ष 2000 के बाद से जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की तीव्रता में वृद्धि देखी गई है, जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्र में अधिक तीव्रता की वर्षा से कम समय में अत्यधिक जल अपवाह भूमि की सतह पर तेज गति के साथ बहता है, जो कि शुष्क क्षेत्र में प्रायः पाये जाने वाली बालू दोमट मृदा के क्षरण का कारण बनता है। इस प्रकार, शुष्क क्षेत्र में फसल की पैदावार को सुरक्षित रखने हेतु कृषि भूमि से मृदा के कणों और पोषक तत्वों के नुकसान को रोकने के लिए उपयुक्त युक्तियों को अपनाना अनिवार्य है।

वर्षाजल संग्रहण, संचयन और भंडारण के क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति के आधार पर वर्षाजल संरक्षण और संचयन प्रणाली *इन–सीटू* या *एक्स–सीटू* हो सकती है। जब वर्षाजल को संचयन क्षेत्र में एकत्र किया जाता है, तो इसे यथास्थान या *इन–सीटू* प्रबंधन कहा जाता है। जबकि, *एक्स–सीटू* प्रबंधन में, एकत्रित वर्षा जल को संचयन क्षेत्र के बाहर संग्रहित किया जाता है। *इन–सीटू* वर्षाजल संरक्षण प्रणाली में, मृदा भंडारण के रूप में कार्य करती है, जबकि *एक्स–सीटू* वर्षाजल संरक्षण के लिए, भंडारण जलाशय प्राकृतिक या कृत्रिम हो सकता है। सामान्य तौर पर, प्राकृतिक जलाशय का मतलब भूजल पुनर्भरण से है, और कृत्रिम जलाशय का मतलब सतह/उपसतह टैंक और छोटे बाँध हैं। विभिन्न संरक्षण तकनीकों को अपनाकर मुख्य रूप से मृदा द्वारा वर्षाजल की थोड़ी मात्रा का संरक्षण किया जाता है। हालांकि, वर्षाजल संचयन तकनीकों द्वारा वर्षा जल का बड़ी मात्रा में संचयन किया जाता है और उपयुक्त संरचनाओं में संग्रहित किया जाता है। शुष्क क्षेत्रों के संदर्भ में दोनों प्रकार की तकनीकों का संक्षिप्त विवरण आगे दिया गया है। वर्षाजल संचयन और संरक्षण सस्य विज्ञान और इंजीनियरिंग उपायों के माध्यम से किया जाता है। यह न केवल वर्षाजल का संचयन करेगा, जल का संरक्षण करेगा बल्कि विशेष रूप से शुष्क क्षेत्र में मृदा के कटाव को भी रोकेगा। इस अध्याय में मृदा और जल संरक्षण की कृषि संबंधी प्रथाओं पर चर्चा की गई है, और आगे उन्हें संक्षेप में वर्णित किया गया है।

मृदा एवं जल संरक्षण के लिए कृषि संबंधी युक्तियाँ

समोच्च खेती/कंटूर खेती: समोच्च खेती एक ऐसी प्रणाली है जहाँ पौधों की मेड़ और पंक्तियाँ समोच्च भूमि पर (भूमि ढलान के आड़े) इस प्रकार लगाई जाती हैं जिससे पौधों की पंक्तियों की एक निरंतर श्रृंखला बन जाये। पौधों की ये श्रृंखलाएं बहते हुए जल के प्रवाह में बाधा पैदा करती है और बहते जल के अवसर समय को बढ़ाती हैं, जिससे जल बहुतायत से मृदा की सतह में समा जाए। कम वर्षा वाले शुष्क क्षेत्रों में, समोच्च खेती प्रणाली भूमि पर कई मेड़ और गड्ढे बनाती है, जो मृदा और नमी के संरक्षण में मदद करते हैं। समोच्च खेती 2 से 7 प्रतिशत के मध्यम ढलान वाली भूमि में सर्वाधिक प्रभावी होती है। शोध के परिणामस्वरूप यह पाया गया है कि समोच्च खेती द्वारा भूमि में नमी के भंडारण से फसल की उपज में 10 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि संभव है। साथ ही समोच्च खेती में मृदा क्षरण से होने वाली हानि 1 प्रतिशत ढलान वाली भूमि पर ऊपर–नीचे की खेती में होने वाले मृदा क्षरण की अपेक्षा 60 प्रतिशत तक कम होती है।

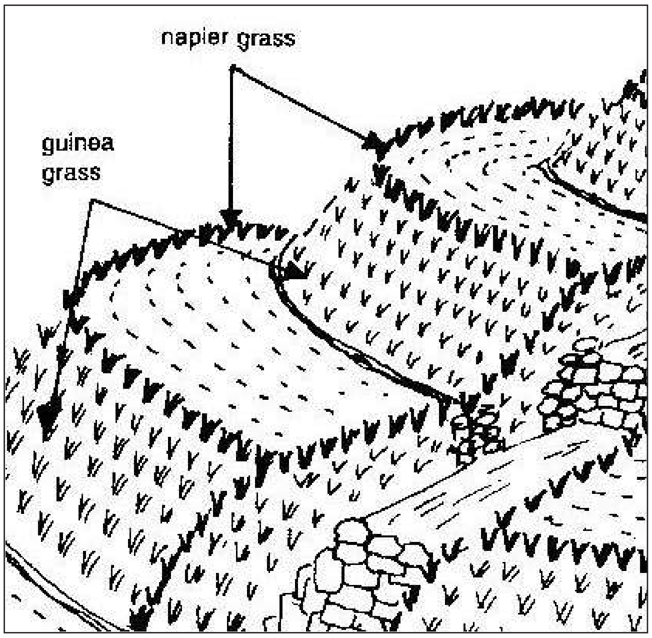

चित्र 1 समोच्च खेती को दर्शाता रेखाचित्र

समोच्च वानस्पतिक मेड़/वानस्पतिक अवरोधः वानस्पतिक अवरोध या समोच्च वानस्पतिक मेड़ या जीवित मेड़, मृदा के कटाव को रोकने और मृदा में नमी के संरक्षण में उपयोगी

साबित होते हैं, जब इन्हें उपयुक्त ऊर्ध्वाधर अंतराल पर रखा जाता है। एक बार स्थापित हो जाने के बाद, ऐसी जीवित मेड़ के रखरखाव की सामान्यतया कोई आवश्यकता नहीं होती है और ये वर्षों तक भूमि में मृदा को क्षरण से बचाते हैं। वानस्पतिक अवरोध प्रायः भूमि में समोच्च रेखाओं पर समोच्च खेती के लिए दिए गए दिशा–निर्देशों की पालना करके लगाये जाते हैं। वानस्पतिक मेड़ के प्रमुख कार्य हैं – (अ) भूमि में ढलान की निरन्तर लंबाई को तोड़ना, जल अपवाह वेग को कम करना और जल के भूमि में समाने के अवसर समय को बढ़ाना, (ब) सतही जल अपवाह की मृदा क्षरण और मृदा परिवहन क्षमता को कम करना, (स) समोच्च भूमि पर खेती और रोपण कार्यों को संभव बनाना, और (द) तीक्ष्ण ढलान वाली भूमि पर समोच्च खेती वाले क्षेत्रों को स्थिर करना। शुष्क क्षेत्रों में, वानस्पतिक अवरोध सेवण घास, धामण घास, मार्वल घास, आदि से बनाये जा सकते हैं, जो कि वानस्पतिक मेड़ के साथ ही पशुधन के लिए चारा संसाधन के रूप में उगाए जा सकते हैं।

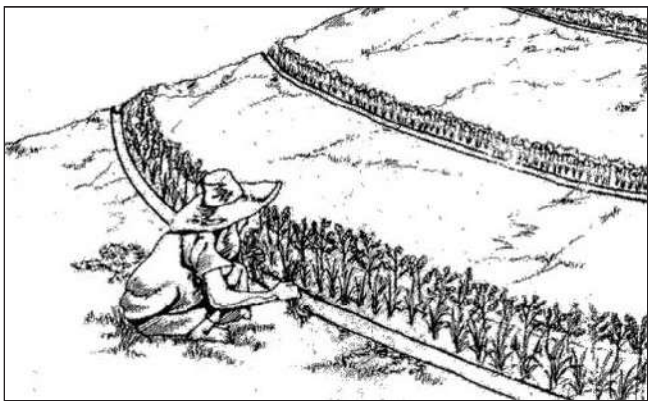

चित्र 2 समोच्च वानस्पतिक मेड को दर्शाता रेखाचित्र

पट्टीदार खेती (स्ट्रिप क्रॉपिंग): इसमें मृदा–कटाव के प्रति अप्रतिरोधी फसलों (मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास, आदि पंक्ति वाली फसलों) और मृदा–कटाव प्रतिरोधी फसलों (हरा चना, काला चना, ग्वार, मूंगफली, आदि) को एक ही क्षेत्र में पट्टी के रूप में लगाते हैं। यह तकनीक जल अपवाह के वेग को कम करती है और लगातार कटती हुई मृदा को बहने से रोकती है। पट्टीदार खेती का उपयोग राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में रेतीली एवं रेतीली दोमट मृदा में 6 मीटर से लेकर 30 मीटर चौड़ाई की पट्टियाँ स्थापित करके हवा के कटाव को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप चारे के उत्पादन, उत्पादकता और गुणवत्ता में वृद्धि होती है। पट्टीदार खेती निम्नलिखित तीन प्रकार की होती हैं –

(अ) खेत की पट्टी फसलः इस प्रणाली में, फसलों की पट्टियाँ एक समान चौड़ाई की होती हैं और सामान्य ढलान पर रखी जाती हैं। यह प्रणाली नियमित ढलानों और उच्च जल अंतःस्पंदन दर की मृदा में उपयोगी होती है।

(ब) समोच्च पट्टीदार खेतीः इस प्रणाली में, फसलों को समोच्च भूमि में पट्टियों के रूप में व्यवस्थित किया जाता है। स्थलाकृति के आधार पर, पट्टियों की चौड़ाई अलग–अलग होती है।

(स) बफर पट्टीदार खेतीः इस प्रणाली में, घास या फलियाँ एवं उनके मिश्रण वाली स्थायी पट्टियाँ उन क्षेत्रों में रखी जाती हैं जो खराब हो या नियमित फसल चक्र में स्थान नहीं बना पाती हैं।

अनाज–दलहनों की अंतरफसल (इंटरक्रॉपिंग): कई अध्ययनों के निष्कर्षों ने संकेत दिया है कि दलहन और अनाज–दलहन की अंतरफसल के भूखंडों से मृदा का नुकसान सबसे कम होता है। अनाज–दलहन की अंतरफसल में, फसल पंक्तियों के बीच की जगह जमीन पर फसल के लगातार बढ़ते आवरण के कारण संकीर्ण हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप वर्षा के प्रभाव द्वारा मृदा की सतह पर कटाव का जोखिम कम हो जाता है। इस प्रकार, दलहन और अनाज–दलहन की अंतरफसल मृदा में पोषक तत्वों को संरक्षित करती है और कृषि क्षेत्रों में मृदा के कटाव का प्रभावी ढंग से विरोध करती है। साथ ही प्रोटीन एवं

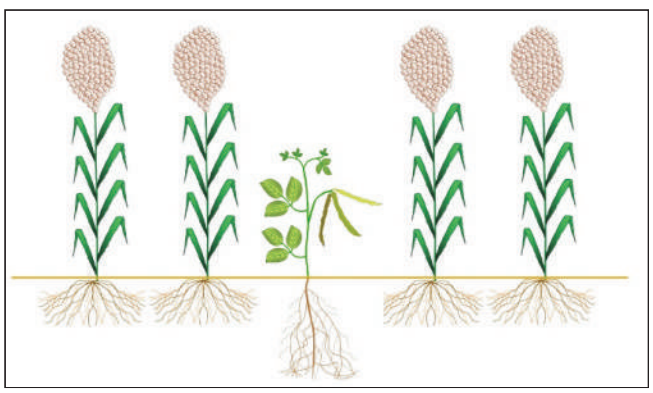

चित्र 3 अनाज-दलहनों की अंतरफसल को दर्शाता रेखाचित्र

ग्लोमलिन, दलहन की जड़ों के साथ सहजीवी के रूप में गोंद का कार्य करता है और मृदा को स्थिर समुच्चय में बांधता है। इसलिए, मृदा में रिक्त स्थान के साथ–साथ खेती की पैदावार में वृद्धि होती है और मृदा के क्षरण एवं सतह पर कठोर परत बनने में कमी आती है। ज्वार और बाजरा जैसी अनाज वाली फसलों के साथ दलहनी फसलों की अंतरफसल में मृदा का अपेक्षाकृत कम नुकसान होने की मुख्य वजह अनाज वाली फसलों की उथली और रेशेदार जड़ प्रणाली होती है, जो मृदा के कणों को एक साथ रखने और बांधने में दलहनी फसलों की सीधी जड़ प्रणाली के साथ बेहतर काम करती है और उनके अलगाव और क्षरण को रोकती है। दलहनी फसलें पर्याप्त कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात को स्थिर रखती है या इसका विस्तार कर सकती हैं, जिससे मृदा के जैविक कार्बन स्टॉक को संरक्षित करने में सहायता मिलती हैं। जब बारिश की बूंदें मृदा की सतह से टकराती हैं, तो बारिश की बूंदों की गतिज ऊर्जा का उपयोग मृदा के कणों और बंधनों को तोड़ने या कमजोर करने के लिए किया जाता है। नतीजतन, मृदा की जुताई या खेती करते समय ढीले–जुड़े और अलग–अलग मृदा के कणों को आसानी से वर्षाजल द्वारा बहाकर ले जाया जाता है।

चित्र 4 ज्वार और ग्वार की अंतरफसल का क्षेत्र दृश्य

हल्की मृदा में ऑफ-सीजन जुताईः बुवाई से पहले मृदा को वांछित गहराई तक तोड़ने का काम करने की प्रथा जुताई कहलाती है। जुताई से मृदा ढीली हो जाती है और इसलिए कटाव का खतरा होता है। जुताई का समय और गहराई दो महत्वपूर्ण कारक हैं, जिन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। भूमि की तैयारी के लिए तथा एक या दो बारिश का लाभ उठाने के लिए फसल की बुआई से पहले जुताई कर देनी चाहिए। शुष्क क्षेत्रों में गर्मी के महीनों के दौरान, हवा की दिशा में लकीरें और खांचे बनाकर जुताई की गई भूमि में हवा के कटाव का प्रभाव कम पाया जाता है। हालांकि, मानसून से पहले लगातार जुताई करने से मृदा के ढेलों का प्रतिशत कम हो जाता है और हवा का कटाव तेज हो जाता है। इसलिए बारिश के दौरान नमी संरक्षण का लाभ उठाने के लिए उचित जुताई बहुत जरूरी है, जिससे मृदा हवा के कटाव से बची रहे।

3.1.6 भूसतह मल्चिंगः बरसात के बाद के मौसम में सतही गीली घास की परत वाष्पीकरण को कम करती है जिसके परिणामस्वरूप फसल की पैदावार अधिक होती है। खुली भूमि की सतह पर पेड़–पौधों की टहनियाँ एवं पत्तियों का कचरा या किसी अन्य वनस्पति को फैलाकर मल्चिंग की जाती है। मल्चिंग का उद्देश्य भूमि की खुली सतह पर तापमान और वाष्पीकरण को कम करना, बारिश की बूँदों के छींटों से होने वाले मृदा क्षरण को कम करना एवं वर्षाजल के मृदा में अवशोषण में वृद्धि करना है। मल्चिंग भूमि की सतह पर जल के प्रवाह में बाधा डालती है, जिससे मृदा का कटाव मंद हो जाता है और इष्टतम तापमान पर सूक्ष्म जैविक परिवर्तन होने लगते हैं। कभी–कभी, मल्चिंग के लिए वनस्पति के जैविक मिश्रण के बजाय कार्बनिक अवशेषों को फैलाने से मृदा और जल के नुकसान को काफी हद तक कम करने में मदद मिलती है। जल संचयन और जल रिसाव के नियंत्रण के लिए पॉलीथीन मल्च भी का उपयोग किया जाता है। मल्चिंग का एक रूप व्यर्थ या मूल्यहीन खेती भी है, जिसमें फसलें बिना कटाई किए या

चित्र 5 भूसतह मल्चिंग के रूप में उपयोग में आने वाले वानस्पतिक पदार्थ

काटकर आंशिक रूप से जमीन की ऊपरी सतह में मिश्रित कर और आंशिक रूप से भूमि की सतह पर डाल दी जाती है। जैविक मल्च के उपयोग से 10 से.मी. गहराई पर अधिकतम तापमान 1 से 6 डिग्री सेल्सियस तक कम हो जाता है, जिसमें खरपतवार में कमी और मृदा की नमी में वृद्धि होती है।

कार्बनिक पदार्थ और तालाब के तलछट का उपयोग: कार्बनिक पदार्थ और तालाब के तलछट के उपयोग से बारिश की बूँदों की छींटाकशी द्वारा मृदा क्षरण क्रिया कम हो जाएगी। इससे मृदा सतह पर परत का निर्माण नहीं होगा, मृदा की सूक्ष्म जैविक गतिविधि में वृद्धि होगी, जल धारण क्षमता में सुधार होगा और पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक रहेगी।

वर्षाजल संरक्षण के लिए इंजीनियरिंग उपाय

समोच्च बाँध: कृषि योग्य भूमि में मुख्य रेखा पर मृदा के बाँध समोच्च खेती और वानस्पतिक बाधाओं के लिए महत्वपूर्ण पूरक होते हैं। मृदा के बाँध तट–बंध की साधारण संरचना की तरह होते हैं, जो भूमि के ढलान पर निर्मित होते हैं। जब मृदा के बाँध समोच्च रेखा पर बनाए जाते हैं, तो उन्हें समोच्च बाँध कहा जाता है, लेकिन जब बंधों को समोच्च के संदर्भ के बिना क्षेत्र सीमाओं पर बनाया जाता है, तो उन्हें क्षेत्र बाँध कहा जाता है। मृदा के कटाव को नियंत्रित करने और वर्षा जल को संग्रहीत करने के उद्देश्य से समोच्च बांधों का उपयोग आमतौर पर अपेक्षाकृत कम वर्षा वाले क्षेत्रों में किया जाता है। समोच्च बाँध सामान्यतया 600 मि.मी. से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में 6 प्रतिशत तक के ढलान के लिए निर्मित किये जाते हैं, जहां मृदा की नमी फसल उत्पादन के लिए एक सीमित कारक होती है। समोच्च बांधों

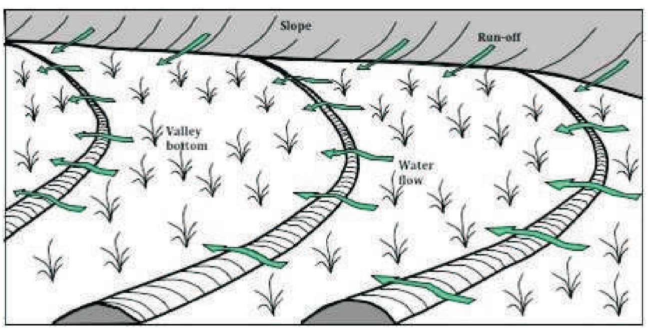

चित्र 6 समोच्च बाँध का रेखाचित्र

में, बाँध पर खेती करना संभव नहीं होता है। यह बाँध सभी प्रकार की अपेक्षाकृत पारगम्य मृदा के लिए उपयुक्त हैं लेकिन चिकनी मृदा या गहरी काली कपास मृदा के लिए नहीं। इस प्रकार की मृदा में आमतौर पर गर्म मौसम में दरारें पड़ जाती हैं, और यही इस बाँध के निर्माण में प्रमुख बाधा होती है।

ग्रेडेड बाँध: जल के ठहराव से बचने के लिए कृषि क्षेत्रों से अतिरिक्त जल को सुरक्षित रूप से निकालने के लिए ग्रेडेड बांधों का उपयोग किया जाता है। ग्रेडेड बाँध उन क्षेत्रों में उपयुक्त होते हैं जहां वार्षिक वर्षा 500 मि.मी. होती है और मृदा अत्यधिक पारगम्य होती है। ग्रेडेड बाँधों में आमतौर पर चौड़ी और उथली नालिकाएँ होती हैं और एक पूर्व निर्धारित अनुदैर्ध्य मृदा ढलान के साथ में बाँध बनाये जाते हैं। चूंकि ग्रेडेड बाँध अनिवार्य रूप से फसली भूमि से अतिरिक्त जल के सुरक्षित निकास के लिए होते हैं, इसलिए ग्रेडेड बाँध पर उपयुक्त आउटलेट का निर्माण करने की आवश्यकता होती है। इस बाँध में दिए गए आउटलेट के माध्यम से एक भूखण्ड से दूसरे भूखण्ड में अतिरिक्त जल की निकासी पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि इन आउटलेट के माध्यम से काफी मात्रा में मृदा का क्षरण हो सकता है। गाद को बहने से रोकने का प्रावधान किया जाना चाहिए और केवल साफ जल को बहने देना चाहिए। ग्रेडेड बाँधों द्वारा जल अपवाह को 4.8 से 20 प्रतिशत तक और मृदा के नुकसान को 4.12 से 24 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष तक कम किया जा सकता है।

प्यूर्टो रिको टैरेस: सूखे पत्थर के प्यूर्टो रिको टैरेस (पी.आर.टी.) का निर्माण समोच्च रेखा पर किया जाता है, जो हर बार जुताई के बाद ढलान के नीचे मृदा के खिसकने के कारण समतल बेंच टैरेस में विकसित हो जाता है। इस प्रकार की टैरेस कृषि योग्य भूमि के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होती है जब ढलान 6 प्रतिशत से अधिक हो और जहाँ मृदा की गहराई उथली हो। इनका निर्माण ज्यादातर उन क्षेत्रों में किया जाता है जहाँ मौके पर पत्थर आसानी से उपलब्ध होते हैं। बारानी क्षेत्रों में फसल उत्पादकता बढ़ाने के लिए ये टैरेस बहुत प्रभावी हैं। इन टैरेस में, 0.60 मीटर × 0.45 मीटर आकार के पत्थर के बाँध डिजाइन किए गए क्षैतिज अंतराल पर नाला–घाटी के दोनों किनारों पर ढलान के पार

मैदान की सीमाओं पर बनाए जाते हैं। क्षेत्र में, पूर्ण रूप से समोच्च रेखा का अनुसरण करना संभव नहीं है, इसलिए, प्यूर्टो रिको टैरेस आमतौर पर क्षेत्र की सीमाओं पर बनाए जाते हैं। ऐसी स्थिति में, संरचना को टूटने से बचाने के लिए शीर्ष ऊँचाई को बनाए रखा जाना चाहिए।

पत्थर की दीवार वाली टैरेस: पत्थर की दीवार वाली टैरेस एक पत्थर की बाधा है, जो छोटी गली या खेती की जाने वाली घाटी में बनाई जाती है। यह बहते हुए जल को रोकने और एक मृदा क्षरित क्षेत्र में अवसादन पैदा करने के लिए बनाया जाता है। जमा हुआ जल नमी का संरक्षण करता है, जिसका उपयोग फसलों को जीवित रखने के लिए किया जा सकता है। पहाड़ी इलाकों की खेती वाली घाटियों में, पत्थर की दीवार वाली टैरेस आमतौर पर मृदा और जल संरक्षण उपाय के रूप में प्रयोग में लायी जाती है, अधिकतर उन जगहों पर जहाँ आस–पास के इलाकों में पत्थर आसानी से उपलब्ध होते हैं। पत्थर की दीवार वाली टैरेस और प्यूर्टो रिको टैरेस के बीच मूल अंतर यह है कि पत्थर की दीवार वाली टैरेस का निर्माण ढलान के पार कृषि योग्य भूमि की घाटियों में किया जाता है, जबकि प्यूर्टो रिको टैरेस का निर्माण घाटी के दोनों किनारों पर स्थित कृषि योग्य भूमि पर किया जाता है।

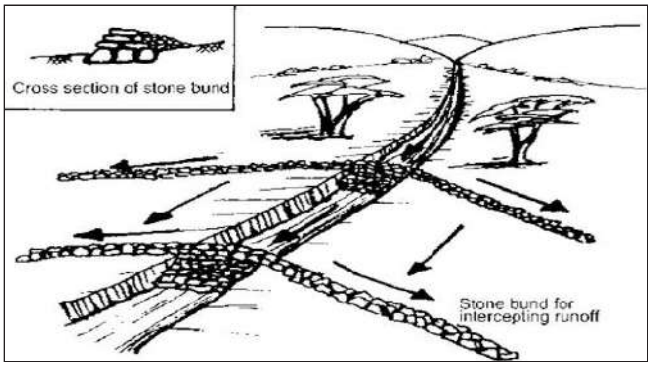

चित्र 7 पत्थर की दीवार वाली टैरेस का रेखाचित्र

समोच्च नालिका (कंटूर फरो): समोच्च नालिका जल अपवाह और मृदा के नुकसान को कम करने, उपज बढ़ाने और आमतौर पर घास के मैदानों और वनभूमि में अपनाया जाने वाला सबसे प्रभावी उपाय है। हालांकि, बहुत रेतीली मृदा या भारी मृदा के क्षेत्र में, उनका लाभ सीमित होता है। समोच्च नालिका की चौड़ाई 30–60 से.मी. और गहराई 10–25 से.मी. हो सकती है। नालिका का आकार 'वी', वर्गाकार, आयताकार या परवलयिक हो सकता है। अपवाह जल को धारण करने के लिए समोच्च नालिकाओं की प्रभावशीलता सतह की ढलान की डिग्री और समोच्च रेखाओं के अनुसरण की सटीकता पर निर्भर करती है। इसका कार्यकाल मृदा की स्थिरता और नालिका की जल भंडारण क्षमता पर निर्भर करता है। समोच्च नालिका का निर्माण हमेशा चोटी से शुरू किया जाता है और उत्तरोत्तर घाटी की ओर बढ़ाया जाता है। ऐसा पाया गया है कि समोच्च नालिका मृदा के कटाव को नियंत्रित करने, जल के प्रवेश को बढ़ाने और मृदा की नमी की मात्रा को बढ़ाने में मदद करती है।

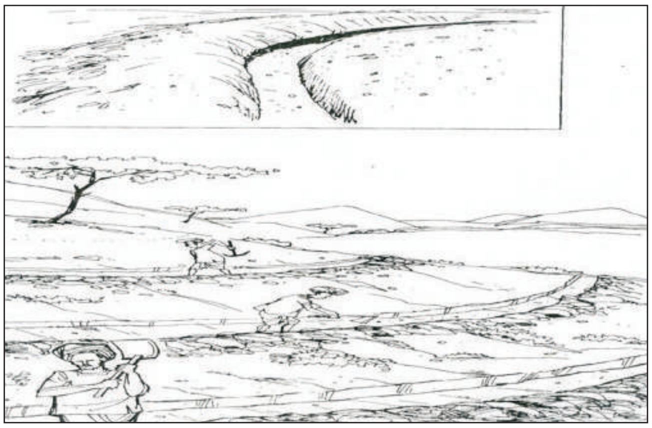
चित्र 8 समोच्च नालिका का रेखाचित्र

समोच्च खाई (कंटूर ट्रेंचिंग): समोच्च खाई एक खोदी गई खाई है, जो किसी जलग्रहण क्षेत्र के ऊपरी और मध्य भाग में भूमि के ढलान पर समोच्च रेखा के साथ निर्मित होती है। इसका निर्माण पहाड़ी ढलानों के साथ–साथ मृदा और जल संरक्षण और वानस्पतिक आवरण की वृद्धि के लिए अवक्रमित और ढलान वाली बंजर भूमि पर किया जाता है। समोच्च रेखा के नीचे खाइयों का निर्माण इस तरह से किया जाता है कि इसका ऊपरी किनारा समोच्च रेखा से बिल्कुल मेल खाता हो। खाइयों के साथ नीचे की ओर बाँध बनाए जाते हैं, जिनमें से खुदाई की गई सामग्री को निकाला जाता है। यह ढलान की लंबाई को तोड़ता है, बहते जल के वेग को कम करता है और मृदा क्षरण की क्रिया को मंद करता है। खाइयों में रखा गया वर्षा जल नमी के यथास्थान संरक्षण में मदद करता है, जो भूमि के नीचे की ओर जाता है

और जलग्रहण क्षेत्र की निचली पहुँच में बेहतर प्रकार की भूमि को भी लाभ पहुँचाता है। इन खाइयों का निर्माण या तो समलम्बाकार या आयताकार होता है।

क्रमबद्ध खाइयाँ: क्रमबद्ध खाइयाँ, क्रमबद्ध तरीके से निर्मित समोच्च रेखा के साथ एक पंक्ति में छोटी लंबाई की उनके बीच में अंतराल के साथ खुदाई की गई खाइयाँ हैं। पंक्तियों के बीच का ऊर्ध्वाधर अंतराल खाइयों के ऊपर से प्रवाह के बिना, जलग्रहण क्षेत्र से अपेक्षित जल अपवाह को रोकने के लिए प्रतिबंधित होता है। इन खाइयों के क्रॉस–सेक्शन क्षेत्र को 10 वर्षों के पुनरावृत्ति अंतराल वाले सबसे तीव्र तूफानों से अपेक्षित जल अपवाह को इकट्ठा करने के लिए डिजाइन किया जाता है। खोदी गई मृदा को खाई के नीचे की ओर ढेर लगाकर इकट्ठा कर दिया जाता है। ये खाइयाँ अत्यधिक ढलान और असिंचित भूमि की नमी व्यवस्था में सुधार करने में बहुत अच्छा प्रदर्शन करती हैं, जो पौधों और घासों के त्वरित विकास और अस्तित्व में मदद करती हैं।

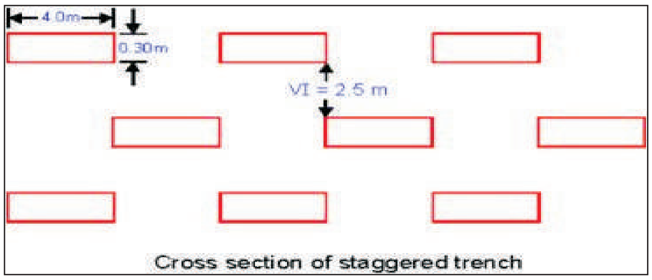

चित्र 9 क्रमबद्ध खाइयों का रेखाचित्र

'वी'-खाई: इनका निर्माण एक 'वी' आकार की खाई खोदकर और खाई के नीचे की ओर बाँध बनाकर समोच्च रेखा पर किया जाता है। ढलान के पार रखी यह खाई ढलान की लंबाई को तोड़ती है और इस तरह जल अपवाह के वेग को नियंत्रित करती है। 'वी'–खाई का सामान्य अनुशंसित आकार 60 से.मी. शीर्ष चौड़ाई और 20 से.मी. गहराई है, ताकि एक त्रिभुज का आकार बनाया जा सके और 'वी'–खाई की प्रति मीटर कुल क्षमता 0.06 घन मीटर होती है। दो नजदीक की 'वी'–खाईयों के बीच के अंतराल को इस प्रकार डिजाइन किया जाना चाहिए कि 'वी'–खाई में बीच वाले क्षेत्र से आने वाले पानी की मात्रा 0.06 घन मीटर से अधिक न हो। 'वी'–खाई का निर्माण करने की सिफारिश केवल 15 प्रतिशत तक ढलान वाले क्षेत्र की भूमि के लिए की जाती है।

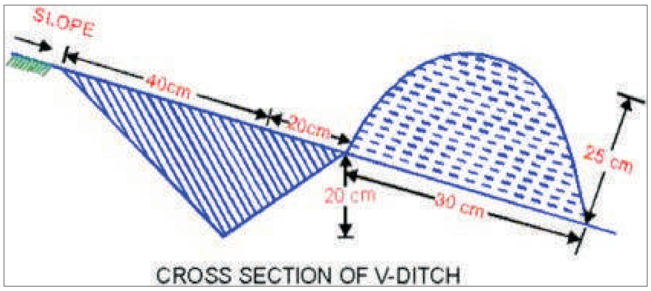

चित्र 10 'वी' आकार की खाई का रेखाचित्र

ग्रेडोनीज: ये बहुत संकरे और बहुत अंदर की ओर ढलान वाले बेंच टैरेस हैं जो समोच्च रेखा पर बनाए जाते हैं। वे समान रूप से खड़ी ढलान वाले क्षेत्रों में वनरोपण के लिए उपयुक्त हैं, क्योंकि उनके पास जल को संरक्षित रखने की पर्याप्त क्षमता है और साथ ही इनमें दो ग्रेडोनिज के बीच में उगाए गए पौधों को अधिक नमी मिलेगी। इस प्रकार की संरचना का निर्माण उस क्षेत्र के लिए किया जाए जहाँ भूमि ढलान 20 प्रतिशत तक और मृदा की गहराई भी अधिक होती है।

ब्रश वुड चेक डैम: ब्रश वुड चेक डैम सभी प्रकार के चेक डैम में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी होते हैं। यह अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं और इनको देशी लकड़ी के तने और झाड़ियों/पेड़ों की शाखाओं और अन्य स्थानीय रूप से उपलब्ध वनस्पति के साथ बनाया जा सकता है। यह छोटे और मध्यम जल निकासी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। संरचना को मजबूती देने के लिए लंगर वाले खूंटे जमीन में गाड़ दिये जाते हैं। जल अपवाह के उत्थान दबाव को विपरीत दिशा से रोकने के लिए खूंटों के चारों ओर तार बांध दिया जाता है।

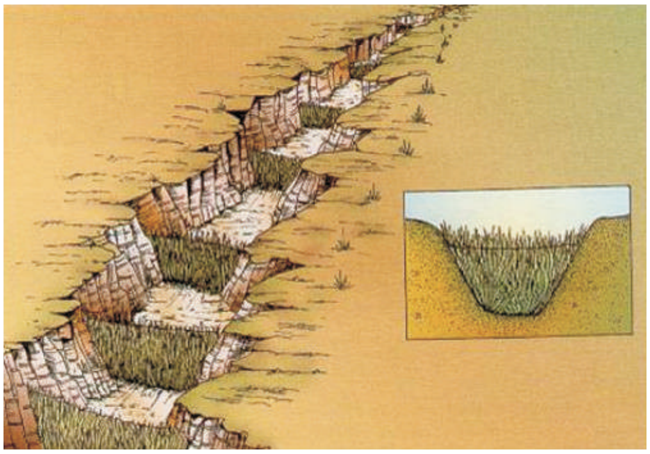

चित्र 11 ब्रश वुड चेक डैम का रेखाचित्र

पॉलीबैग चेक डैमः जब जल की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा को मध्यम वेग से संभालना होता है, तो जल निकासी रेखा के पार अवरोध के निर्माण के लिए बिना जाली वाले नाले की रेत से भरे खाली सीमेंट बैग का उपयोग किया जाता है। नींव के प्रयोजन के लिए नाले के तल में 20 से.मी. मृदा की खुदाई की जाती है। पॉलीबैग में 80 प्रतिशत क्षमता तक बिना जाली वाले नाले की रेत भरी जाती है और फिर अपेक्षित ऊँचाई प्राप्त करने के लिए कई पॉलीबैग को परतों के रूप में इकट्ठा किया जाता है। थैलों की सिलाई के लिए केवल पॉलीथीन के धागे का ही प्रयोग करना चाहिए। फिर थैलों को एक दूसरे के साथ ऊपर की तरफ पॉलीथीन के धागे से बाँध दिया जाता है ताकि वे एक इकाई के रूप में बन सकें। बैगों का ढेर लगाते समय चिनाई के प्रक्रम को अपनाया जाना चाहिए। जल निकासी रेखाओं के मध्य और निचले इलाकों में, संरचना को अतिरिक्त मजबूती देने के लिए पॉलीबैग को बुने हुए तार में लगाया जा सकता है। इस प्रकार के चेक डैम की मुख्य सीमितता पॉलीबैग का लम्बे समय तक स्थायी रूप से नहीं टिके रहना अर्थात् खराब स्थायित्व है। जब ये पॉलीबैग लगातार सूर्य की रोशनी के संपर्क में आते हैं, तो यह अलग–अलग जगहों से फट सकते हैं और कुछ समय बाद नष्ट हो सकते हैं।

चित्र 12 पॉलीबैग चेक डैम की तस्वीर

ढीले पत्थर के चेक डैमः ये संरचनाएं खड़ी और चौड़ी नालियों में जल अपवाह के वेग को रोकने के लिए प्रभावी होती हैं। ये जलग्रहण क्षेत्र के ऊपरी इलाकों के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं। इनका कार्यकाल अपेक्षाकृत लंबा होता है और इनमें आमतौर पर कम रखरखाव की आवश्यकता होती है। इनके निर्माण के लिए गली के तल की खुदाई लगभग 0.30 मीटर की एक समान गहराई तक की जाती है। फिर नींव के स्तर से पत्थरों की सूखी चिनाई कर दीवार को ऊपर उठाया जाता है। इनके निर्माण के लिए 20 से 30 से.मी. आकार के सपाट पत्थर सबसे अच्छे होते हैं और इस तरह से बिछाए जाते हैं कि सभी पत्थर एक साथ बंध जाते हैं। चेक डैम के केंद्र में बड़े आकार के पत्थर रखे जाते हैं और पत्थरों के बीच की खाई को पत्थरों के छोटे टुकड़ों से भर दिया जाता है। डैम के अंतिम सिरों पर कटाव को रोकने के लिए डैम को नाले के किनारों के स्थिर हिस्से में 0.3 से 0.6 मीटर तक की ऊँचाई तक बनाया जाना चाहिए। डैम के केंद्र में, अधिकतम जल अपवाह के सुरक्षित निकास के लिए एक उपयुक्त उत्प्लव मार्ग बनाया जाता है।

मृदा चेक डैमः जिन स्थानों पर ढलान उपलब्ध नहीं होता है और अन्य अस्थायी संरचनाएं अप्रभावी होती हैं, वहाँ मृदा के चेक डैम का निर्माण किया जाता है। इन मृदा के चेक डैम का निर्माण जल उत्प्लवन की व्यवस्था के प्रावधान के साथ किया जाता है। मृदा सबसे सस्ती और आमतौर पर सबसे आसानी से उपलब्ध सामग्री है। इसलिए, जहाँ भी संभव हो, मृदा के गली प्लग का निर्माण करना आसान और किफायती होता है, लेकिन इसके लिए वनस्पति आवरण के साथ स्थिरीकरण की आवश्यकता होती है। मृदा के चेक डैम के निर्माण के लिए ऊर्ध्वप्रवाह की ओर गड्ढा किया जाना चाहिए, ताकि यह जल अपवाह के वेग को कम करने में बाधा के रूप में भी काम करे और संग्रहित जल भूजल रिचार्जिंग में मदद करे।

चित्र 13 मृदा चेक डैम का रेखाचित्र

गेबियन संरचना/तार के जाल वाला चेक डैमः यदि अनियमित आकार के पत्थरों का उपयोग किया जाना है, तो सूखे पत्थर की चिनाई वाली संरचना को आमतौर पर बुने हुए तार में लपेटा जाता है ताकि पत्थरों के गिरकर जल के साथ बहने से रोका जा सके। ऐसी संरचनाओं को गेबियन संरचना या तार के जाल वाला चेक डैम कहा जाता है। गेबियन या बुने हुए तार के जाल वाले चेक डैम का उपयोग जल अपवाह के वेग को नियंत्रित करने, वनस्पति को स्थापित करने और मृदा कटाव को नियंत्रित करने के लिए अर्ध–स्थायी सहायता के रूप में किया जाता है। यह जल निकासी रेखा उपचार/नाली नियंत्रण के लिए बहुत उपयोगी संरचना है, विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ जल प्रवाह का वेग और तलछट भार बहुत अधिक होता है। भूस्खलन को नियंत्रित करने के लिए भी इसका सफलतापूर्वक उपयोग किया जाता है। निचली पहुँच में गैबियन संरचना का उपयोग जल संचयन के उद्देश्य से संरचना के ऊपर की ओर मृदा को भरकर किया जा सकता है।

★ ★ ★

भारत के गर्म शुष्क क्षेत्र में भूमि क्षरण, मृदा गुणवत्ता और पौधों के पोषक तत्वों का खनन

आर.एस. यादव[1], महेश कुमार[1], धीरज सिंह[1] एवं श्रवण कुमार[2]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

भारत में शुष्क क्षेत्रों का वितरण और विशेषताएँ

भारत में शुष्क क्षेत्र 38.7 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है, जिसमें गर्म शुष्क क्षेत्र (31.7 मिलियन हेक्टेयर) और ठंडा शुष्क क्षेत्र (7.0 मिलियन हेक्टेयर) शामिल है। यह क्षेत्र मुख्य रूप से उत्तर–पश्चिमी राज्यों (28.7 मिलियन हेक्टेयर) के राजस्थान (62%), गुजरात (20%), पंजाब और हरियाणा (7%) और दक्षिणी भारत (3.13 मिलियन हेक्टेयर) जिसमें महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश (11%) का हिस्सा शामिल है, में फैला हुआ है। शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों को नामित करने के लिए नमी–सूचकांक की अवधारणा प्रमुख मापदंड है जिसमें क्रमशः –66.6 प्रतिशत से कम तथा –66.6 से –33.3 प्रतिशत तक नमी–सूचकांक होता है। भारत के गर्म शुष्क क्षेत्र में जलवायु और भौतिकी की मुख्य विशेषताएँ कम और अनिश्चित वर्षा (100 से 500 मि.मी. वार्षिक), चमकदार और लंबे समय तक धूप, अत्यधिक तापमान, मृदा नमी का अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन, क्षीण वनस्पतियाँ, खराब गुणवत्ता और अल्प भू–जल उपलब्धता, रेत के टीले और चट्टानी/कंकड़ वाले इलाकों के साथ खनन और खराब भूमि, अतिचारित और अवक्रमित चरागाह भूमि आदि है। अधिकांश मृदाएँ उर्वरता में खराब है और उच्च कृषि उत्पादकता के लिए कई बाधाएँ हैं। ये कारक भूमि उपयोग प्रक्रम के साथ–साथ गर्म शुष्क क्षेत्र में कृषि उत्पादन प्रणालियों की स्थिरता को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। इस क्षेत्र में कृषि एक प्रमुख भूमि उपयोग है, जो कि मुख्य रूप से वर्षा–आधारित, उच्च जोखिम व अनिश्चितता के अधीन है। कुल मिलाकर, भारत के गर्म शुष्क क्षेत्रों में जीवन के लिए बहुत ही विरल परिस्थितियाँ हैं, लेकिन फिर भी यह क्षेत्र एक बड़ी मानव और पशुधन आबादी के साथ ही विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और जीवों का पोषण करता है।

गर्म शुष्क क्षेत्र में भूमि क्षरण की स्थिति और प्रक्रियाएँ

भूमि, मृदा, जल, वनस्पति आदि प्राकृतिक संसाधनों में मात्रात्मक और गुणात्मक गिरावट से ग्रसित भूमि क्षरण से खाद्य सुरक्षा गंभीर रूप से प्रभावित होती है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 40 प्रतिशत से अधिक भाग इन भूमि क्षरण प्रक्रियाओं के अधीन आता है। भारत के गर्म शुष्क क्षेत्र का 50 मिलियन हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र बार–बार सूखे और घरेलू दबावों से प्रभावित भूमि क्षरण के लिए सबसे अधिक संवेदनशील है। पारंपरिक रूप से वायु क्षरण एक प्रमुख भूमि क्षरण कारक था, जो समय के साथ कम हो गया है। लेकिन इसके साथ ही अन्य कारक और प्रक्रियाएँ जैसे कि जल क्षरण (उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में), नहरी–कमान क्षेत्रों में जल भराव और लवणता, बढ़ते औद्योगिकीकरण, खनन गतिविधियाँ, शहरीकरण आदि इस क्षेत्र में भूमि क्षरण में महत्वपूर्ण योगदान के साथ उभर रहे हैं। इस प्रकार, गर्म शुष्क क्षेत्र के 60 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रफल में मरुस्थलीकरण को रोकने के लिए गहन प्रबंधन की आवश्यकता है। मानव और पशुपालन के तहत लगातार बढ़ते दबाव के साथ–साथ खराब गुणवत्ता वाले जल संसाधनों का उपयोग करके सिंचित फसलों की खेती में वृद्धि इस क्षेत्र को भूमि क्षरण के प्रति और अधिक

[1]प्रधान वैज्ञानिक; [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक

संवेदनशील बना रही है। हालांकि, नीतिगत और साथ ही तकनीकी हस्तक्षेप ने भूमि क्षरण को काफी हद तक कम कर दिया है, लेकिन अभी भी विभिन्न प्रक्रियाएँ जैसे कि चरागाह भूमि का क्षरण, वायु क्षरण और निक्षेपण, जल क्षरण, सिंचित भूमि का लवणीकरण, लगातार बढ़ती खनन गतिविधियों के कारण क्षरण, औद्योगिक उत्खनन, खराब गुणवत्ता वाले भूमिगत जल संसाधन का अत्यधिक दोहन, सिंचित क्षेत्रों में वर्षा–आधारित कृषि में वृद्धि आदि सक्रिय हैं। घरेलू क्षेत्रों का विस्तार, औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, प्रतिष्ठानों के तहत् भूमि उपयोग में वृद्धि, चरागाह और वन भूमि को घरेलू और कृषि उपयोग के तहत् परिवर्तित करना इत्यादि विकासात्मक गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधन आधार पर भारी दबाव बढ़ा है, जिसने इस क्षेत्र में पारंपरिक और सामाजिक ताने–बाने को प्रभावित किया है। इससे क्षेत्र में जैव–विविधता और पारिस्थितिक तंत्र में भी परिवर्तन हुआ है। वायु अपरदन, जल अपरदन, जल भराव और लवणता, वनस्पति क्षरण, खदान अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, भूजल से संबंधित क्षरण आदि शुष्क क्षेत्रों में प्रमुख भूमि–क्षरण प्रक्रियाएँ हैं।

गर्म शुष्क क्षेत्र में मृदाओं की विशेषताएं और गुणवत्ता

काजरी संस्थान के शोध के अनुसार, जलोढ़ के चतुर्थक अवसादन और उसके बाद टीलों के निर्माण से होने वाली वातोढ़ गतिविधियों ने जलोढ़ और वातोढ़ को भारत के गर्म शुष्क क्षेत्रों में प्रमुख भूमि रूप बना दिया। इस क्षेत्र की मृदा आमतौर पर क्षारीय प्रतिक्रिया के साथ कंकाल और चूनेदार होती है और इसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम होती है। मृदा वर्गीकरण के अनुसार इस क्षेत्र की मृदाओं को एंटीसोल (54.21%) एरिडिसोल (45.1%) और कुछ क्षेत्रों में अल्फिसोल (0.67%) के तहत वर्गीकृत किया गया है। एंटीसोल की मृदाएँ आमतौर पर गहरी से बहुत गहरी, रेतीली (>80%), पीले–भूरे रंग की, ढीली, गैर–चिपचिपी और गैर–प्लास्टिक, अच्छा जल निकास, बहुत तेज पारगम्यता और कम जल–धारण क्षमता वाली होती है। एरिडिसोल में अपेक्षाकृत कम वातोढ़ गतिविधि होती है, जिसमें अच्छी तरह से सीमांकित गहरी मृदाएँ और मृदा–प्रोफाइल के नीचे चूने की परत पाई जाती है। रेत की मात्रा, मृदा–रंग, प्लास्टिसिटी, पोषक तत्व और जल–धारण क्षमता के लिए एंटीसोल की तुलना में एरिडिसोल में थोड़ी बेहतर भौतिक स्थितियाँ देखी गईं। भारत के गर्म शुष्क क्षेत्रों में अल्फिसोल मृदाएँ बहुत कम क्षेत्रों में पाई जाती हैं जिनमें तुलनात्मक रूप से रेत की मात्रा (36%), कार्बनिक कार्बन (0.37%), मध्यम पारगम्यता और जल–धारण में अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध पाई गई। मृदा गुणवत्ता में गिरावट, मृदा उत्पादकता के साथ–साथ पर्यावरणीय क्षमता में भी महत्वपूर्ण कमी लाती है। शुष्क क्षेत्रों में मृदा–क्षरण कारकों के साथ ही अल्प कार्बनिक कार्बन इन मृदाओं की खराब उर्वरता के लिए जिम्मेदार हैं। इन मृदाओं में मृदा–क्षरण के कारण सिल्ट और रेत के कणों की मात्रा में भी महत्वपूर्ण कमी पाई गई।

गर्म शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में आमतौर पर कार्बनिक पदार्थ कम होते हैं और इसमें अकार्बनिक पोषक तत्व जैसे कि खनिज और/या खनिज तत्वों के (हाइड्र) ऑक्साइड अधिक मात्रा में होते हैं। इन मृदाओं में पोषक तत्वों और पानी के अणुओं की अवशोषण और धारण क्षमता बहुत कम होती है, क्योंकि मृदा में क्ले और सिल्ट के कण और ह्यूमिक पदार्थ कम मात्रा में पाये जाते हैं। ये मृदाएँ आमतौर पर क्षारीय होती है और इनमें कैल्शियम और घुलनशील लवण अधिक मात्रा में होते हैं। इन क्षेत्रों में उच्च तापमान और त्वरित मृदा–अपरदन के कारण कार्बनिक पदार्थों का तेजी से ऑक्सीकरण होने के साथ ही जैवभार और पौधों के अवशेषों का उत्पादन और पुनर्चक्रण अपेक्षाकृत कम होता है। मृदाओं में कार्बनिक कार्बन की मात्रा वर्षा और मृदा की बनावट के आधार पर 0.05 से 0.40 प्रतिशत तक पाई गई जिसका प्रमुख अंश गैर–ह्यूमिक तथा कुछ मात्रा फल्विक और ह्यूमिक रूप में उल्लेखित है। आमतौर पर मृदाओं में नाइट्रोजन मुख्यतः कार्बनिक (>95%) रूप में पाया जाता है, लेकिन तुलनात्मक रूप से इस क्षेत्र की मृदाओं में अकार्बनिक नाइट्रोजन की मात्रा काफी अधिक (20 प्रतिशत तक) पाई गई। अतः वनस्पति आवरण बढ़ने से इन मृदाओं में कार्बनिक कार्बन और नाइट्रोजन (सी:एन अनुपात) का निर्माण बढता है। शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में कुल नाइट्रोजन

की मात्रा में काफी भिन्नता देखी गई, जो कि जलोढ़ में वातोढ़ भूमि रूपों की तुलना में अधिक होता है।

शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में, कुल फॉस्फोरस में भी काफी भिन्नता (250 से 1200 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा.) पाई गई, जिसमें अकार्बनिक (2/3) और कार्बनिक (1/3) रूप शामिल हैं तथा भूमि उपयोग, मृदा बनावट, कृषि प्रबंधन आदि पर निर्भर करता है। अकार्बनिक फॉस्फोरस के रूप में कैल्शियम फॉस्फेटस और कार्बनिक फॉस्फोरस के रूप में फाइटेट्स प्रमुख अंश हैं। फसल अवधि तथा स्थानिक रूप से भी मृदा फॉस्फोरस की उपलब्धता (0.5 से 5.5 प्रतिशत) में व्यापक भिन्नता देखी गई। आमतौर पर शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में उपलब्ध फॉस्फोरस में कम से मध्यम मात्रा पाई गई, जो कि खाद एवं उर्वरकों द्वारा आपूर्तित बाहरी फॉस्फोरस पर निर्भर करती है। आर्बस्कुलर माइकोराइजल कवक को अधिकांश शुष्क पौधों से जुड़े महत्वपूर्ण गतिशील सूक्ष्म–सहजीवी के रूप में देखा गया है, जो न केवल फॉस्फोरस संचलनकर्ता के रूप में कार्य करता है बल्कि शुष्क वातावरण के शमन और अनुकूलन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में पौधों की वृद्धि और पोषण को बढ़ाने के लिए अंतर– और अंत–सूक्ष्मजीवीय अंतःक्रियाओं का भी उल्लेख किया गया है। इन मृदाओं में अकार्बनिक और कार्बनिक दोनों फॉस्फेटस को गतिशील करने के लिए अंतर– और बाह्य–कोशिकीय रूप से प्राप्त फॉस्फेटेस एंजाइम का महत्व उल्लेखित है। आमतौर पर शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में कुल पोटेशियम की उच्च मात्रा (2000 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. तक) पाई गई है, जो कि जल में घुलनशील, विनिमय योग्य, गैर–विनिमय और स्थिर पोटेशियम के रूपों में देखी जाती है। खनिज रूप से स्थिर पोटेशियम प्रमुख अंश है, उसके बाद गैर–विनिमय और फिर विनिमय योग्य और सबसे कम घुलनशील रूप हैं, जो इन मृदाओं में रेत और सिल्ट के अंशों के साथ सहसंबद्ध दर्शाते हैं। बढ़ती फसल तीव्रता के साथ ही इन मृदाओं में पोटेशियम तत्व की कमी उल्लेखनीय रूप से लगातार बढ़ रही है। कैल्शियम और मैग्नीशियम प्रमुख आवश्यक तत्व हैं, जो आमतौर पर इन मृदाओं में द्वितीयक खनिजों के रूप में देखे जाते हैं। उप–मृदा परतों में कैल्साइट के रूप में प्रभुत्व वाली मृदा–प्रोफाइल में कैल्शियम की मात्रा 20% तक उल्लेखित है। कैल्शियम की उपलब्धता महीन बनावट वाली मृदाओं में सबसे अधिक पाई गई। इन मृदाओं में मैग्नीशियम की मात्रा अकार्बनिक और कार्बनिक दोनों रूपों में देखी गई। अधिकांश शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर की मात्रा आमतौर पर पौधों की वृद्धि के लिए पर्याप्त होती है। सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लोहा (Fe), जस्ता (Zn), मैंगनीज (Mn) और तांबा (Cu) खनिजों से प्राप्त होते हैं तथा इन मृदाओं में लोहा व जस्ता की काफी कमी पाई गई।

गर्म शुष्क क्षेत्र में पौध पोषक खनन

आमतौर पर, शुष्क क्षेत्र की मृदाएँ पौधों के पोषक तत्वों के लिए अपेक्षाकृत कमजोर होती है, क्योंकि इन भूमियों का उपयोग विरल जलवायु परिस्थितियों के कारण लम्बे समय से वर्षा–आधारित खेती के रूप में किया जा रहा है। हालाँकि, हाल ही में जल और ऊर्जा संसाधनों की बढ़ती उपलब्धता के साथ सिंचित भूमि उपयोग के तहत क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है। इसके अलावा फसलों की खेती के लिए इन मृदाओं की वहन क्षमता अपेक्षाकृत बहुत कम है, क्योंकि ये मृदाएँ कार्बनिक पदार्थों से रहित हैं और पोषक तत्व और जल धारण में खराब हैं। इसलिए इन मृदाओं की अंतर्निहित उर्वरता खराब है और फसलों की उत्पादकता क्षमता केवल कृषि संबंधी आयामों के बाहरी अनुप्रयोग द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा इन मृदाओं के खराब भौतिक–रासायनिक गुणों के कारण उर्वरक/पोषक तत्व उपयोग दक्षता भी कम है। इसलिए, शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में फसल की खेती के लिए पोषक तत्व अनुप्रयोग की दर अन्य क्षेत्रों की मृदाओं की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक है। इन मृदाओं में कार्बन और नाइट्रोजन सबसे अधिक गतिशील हैं, क्योंकि शुष्क क्षेत्र में उच्च तापमान की स्थिति के साथ कार्बनिक पदार्थों की खराब अवधारण और स्थिरीकरण और इन पोषक तत्वों की उच्च गैसीय हानि होती है। गर्म शुष्क क्षेत्र में मृदा–प्रोफाइल में मृदा कार्बन के संचय की तुलना में बीस गुना से अधिक कार्बन उत्सर्जन पाया गया। इसलिए कार्बनःनाइट्रोजन अनुपात जो आमतौर पर शुष्क मृदाओं में संकीर्ण होता है, नाइट्रोजन की गतिशीलता और इसके परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कार्बन

स्थिरीकरण में वृद्धि ने इन मृदाओं में नाइट्रोजन की मात्रा को भी बढ़ाया है। इसके अलावा, शुष्क क्षेत्र में वर्षा–आधारित भूमि उपयोग का प्रभुत्व होने के कारण, नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग सबसे अधिक प्रचलित और सामान्य अभ्यास है, दलहन फसलों के अलावा फॉस्फेटिक उर्वरकों का उपयोग बहुत कम किया जाता है, तथा पोटेशियम का उपयोग शायद ही कभी किया जाता है। इसलिए, एन–पी–के स्टोइकोमेट्रिक संबंध गड़बड़ा गया है और आमतौर पर इन मृदाओं में पोटेशियम और आंशिक रूप से फॉस्फोरस का अधिक दोहन हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में पोटेशियम की कमी हो रही है, जो शुष्क उत्पादन प्रणाली में समकालीन कृषि पद्धतियों में फसल की सघनता बढ़ने के साथ और भी बढ़ रही है। काजरी में हुए शोध के अनुसार गर्म शुष्क क्षेत्र की मृदा उर्वरता में कमजोर है और बढ़ते क्षेत्रफल और फसल की सघनता के साथ पोषक तत्वों की उपलब्धता में तेजी से कमी होती जा रही है। लगभग पूरे गर्म शुष्क क्षेत्र में मृदा कार्बनिक कार्बन की कमी पाई गई। मृदा में उपलब्ध फॉस्फोरस की मात्रा में भी काफी कमी देखी गई है, जो वर्ष 2002 में 18 प्रतिशत से बढ़कर हाल के वर्षों में 48 प्रतिशत तक उल्लेखित की गई है। शुरू में गर्म शुष्क क्षेत्र के अंतर्गत पूरा क्षेत्र उपलब्ध पोटेशियम के लिए पर्याप्त श्रेणी में था, लेकिन फसलों की सघन खेती के साथ, इन मृदाओं में उपलब्ध पोटेशियम की मात्रा 25 से 30 प्रतिशत उच्च, 60 प्रतिशत मध्यम और 12 प्रतिशत से अधिक अपर्याप्त श्रेणी में पाया गया। इस क्षेत्र में कुल क्षेत्रफल के 41 प्रतिशत और 57 प्रतिशत भाग में क्रमशः लौह और जस्ता जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी पाई गई। शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में पोषक तत्वों की कमी के लिए मुख्य चिंता में खराब कार्बनिक पदार्थ स्थिरीकरण, खराब और असंतुलित उर्वरीकरण, पौधों के पोषक तत्वों की कमी के लिए बढ़ती मात्रा और संख्या विशेष रूप से पोटेशियम, लोहा, जस्ता आदि की कमी की श्रेणी में आना, पोषक तत्वों के उपयोग की खराब दक्षता और कारक उत्पादकता आदि शामिल हैं। इसलिए गर्म शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में पोषक तत्वों की लगातार कमी, क्षेत्र के समग्र कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। यह न केवल फसलों की उत्पादकता और लाभप्रदता को प्रभावित कर रहा है, बल्कि पूरे कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र पर भी महत्वपूर्ण रूप से प्रभाव डाल रहा है।

निष्कर्ष

गर्म शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में आमतौर पर कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों की कमी होती है। खराब जल उपलब्धता, उच्च तापमान और हवा का वेग, कम वनस्पतियाँ आदि सहित विरल जलवायु परिस्थितियाँ इस क्षेत्र को भूमि–क्षरण के लिए सबसे अधिक संवेदनशील बनाती हैं। मृदा के गुण, क्षेत्र में स्थायी कृषि उत्पादन के लिए अनुकूल नहीं हैं और अधिकांशतः पोषक तत्वों में अपर्याप्त हैं। समय के साथ भारत के गर्म शुष्क क्षेत्र में अनुसंधान, विकास और नीतिगत हस्तक्षेपों के माध्यम से किए गए निरंतर प्रयासों के कारण भूमि–क्षरण की स्थिति, कारकों और प्रक्रियाओं में काफी बदलाव आया है। हालाँकि, इस क्षेत्र में प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के कारण अभी भी भूमि–क्षरण का अत्यधिक खतरा है। यह मुश्किल है लेकिन मृदा में कार्बन अवशोषण और स्थिरीकरण को बढ़ाने से इस क्षेत्र की मृदाओं की गुणवत्ता पर काफी प्रभाव पड़ सकता है। इसके अलावा रेत के टीलों का स्थिरीकरण, आश्रय–क्षेत्र में वृक्षारोपण, मृदा और जल संसाधनों का संरक्षण, भूमि उपयोग और कृषि प्रणालियों का एकीकरण, नाइट्रोजन के जैविक निर्धारण को बढ़ाना, पुनर्योजी कृषि पद्धतियाँ, सटीक और संरक्षित कृषि, फसल विविधीकरण आदि ऐसे उपाय हैं जो इस क्षेत्र में भूमि–क्षरण को महत्वपूर्ण रूप से कम कर सकते हैं।

★ ★ ★

मृदा–रासायनिक क्षरण: संभावित कारण एवं संभाव्य समाधान

महेश कुमार[1], प्रियब्रत सांतरा[1], नवरतन पंवार[1] एवं आर.एस. यादव[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

मृदा को एक प्राकृतिक एवं जीवित पदार्थ के रूप में परिभाषित किया गया है, जो मूल द्रव्य पर जलवायु और जीवों के संयुक्त प्रभाव से विभिन्न भूआकृतियों में समय की विशेष अवधि में विकसित हुई है। मनुष्य प्राचीन काल से भोजन, वस्त्र, आवास और ऊर्जा की आवश्यकताओं एवं अपनी जीविका के लिए मुख्य रूप से मृदा संसाधनों पर निर्भर रहा है। इस महत्वपूर्ण संसाधन पर दबाव इस हद तक बढ़ गया है कि जीवित प्राणियों और मृदा के बीच संबंध महत्वपूर्ण एवं समालोचनात्मक हो गए हैं। प्राकृतिक संसाधनों, विशेष रूप से मृदा और उनके आंकड़ाकोष का एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक मूल्याँकन महत्वपूर्ण मानदंड है, जो खाद्य उत्पादन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतवर्ष मे तेजी से बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति एवं जीवनयापन हेतु औद्योगिक विकास के साथ–साथ कृषि संबन्धित कार्यों मे भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है और देश मे कृषि अब एक व्यवसाय के रूप में उभरने लगी है। जिसके फलस्वरूप भूमि संसाधनों का अत्यधिक दोहन एवं उपलब्ध आदानों जैसे रासायनिक खाद, जीवनाशी, सिंचाई जल आदि के अनियंत्रित एवं असंतुलित उपयोग से मृदा उत्पादकता में कमी के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के विकारों जैसे लवणीयता, क्षारीयता, अम्लीयता, वायु क्षरण, जल क्षरण, जल भराव इत्यादि से ग्रसित हो रही है। वर्तमान में भूमि क्षरण कृषि क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या है। सम्पूर्ण देश में 329 मिलियन हेक्टेयर के कुल भौगोलिक क्षेत्र में से, 120 मिलियन हेक्टेयर भूमि विभिन्न प्रकार के भूमि क्षरण द्वारा प्रभावित है, जिसका विवरण तालिका 1 में दिया गया है।

लवण एवं क्षार प्रभावित मृदायें

विश्व–स्तर पर, 75 देशों में लगभग 953 मिलियन हेक्टेयर भू–भाग लवणीयता एवं क्षारीयता की समस्या से प्रभावित है। जिसमें से 343 मिलियन हेक्टेयर लवणीयता एवं 559 मिलियन हेक्टेयर क्षारीयता से ग्रसित है। खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) की भूमि और पौध प्रबंधन सेवा के अनुसार, विश्व की 6 प्रतिशत से अधिक भूमि लवणता या क्षारीयता से प्रभावित है। लवणीकरण और सॉडिफिकेशन के

तालिका 1. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के द्वारा वर्ष 2010 में प्रकाशित भूमि क्षरण पर सुसंगत आंकड़े

भूमि क्षरण के प्रकार	क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर)
जल अपरदन	82.57
वायु अपरदन	12.40
लवण एवं क्षार प्रभावित मृदायें	6.73
अम्लीय मृदायें	17.94
खनन और औद्योगिक अपशिष्ट प्रभावित मृदायें	0.19
जल भराव (स्थायी सतही जल भराव)	0.88
कुल क्षेत्रफल	120.72

[1]प्रधान वैज्ञानिक

कारण होने वाली मृदा का क्षरण विश्वभर में चिंता का विषय बना हुआ है क्योंकि यह कृषि भूमि की संभावित उत्पादकता को क्षीण करता है। शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में मृदा की लवणीयता एवं क्षारीयता एक आम समस्या होती है। इन क्षेत्रों में ऐसी मृदा की लवणीयता/क्षारीयता में योगदान करने वाले कारकों में उच्च वाष्पीकरण, कम और असमान वर्षा, मृदा में उथली गहराई पर नमक उपस्थिति तथा कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट से भरपूर खराब गुणवत्ता वाला भूजल शामिल है। भारत में लगभग 6.73 मिलियन हेक्टेयर भूमि भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.1 प्रतिशत लवणता (2.96 मिलियन हेक्टेयर) और क्षारीयता (2.96 मिलियन हेक्टेयर) की समस्या से प्रभावित है, जो कई राज्यों के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में फैला हुआ है (तालिका 2)। एक अनुमान के अनुसार देश में सिंचाई कमानों के द्वितीयक लवणीकरण, शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में खराब गुणवत्ता वाली भूजल सिंचाई, कृषि क्षेत्रों मे समुद्र जल द्वारा आप्लावन आदि कारणों से लवणता और क्षारीयता से प्रभावित क्षेत्र वर्ष 2025 में बढ़कर 13 मिलियन हेक्टेयर होने की संभावना है।

भारत में लवण एवं क्षार प्रभावित मृदा का पीएच, विद्युत चालकता (ईसी) और विनिमेय सोडियम प्रतिशत (ईएसपी) के मानदंडों के अनुसार राज्यवार वर्गीकरण विस्तार तालिका 2 में दिया गया है जो यह दर्शाता है कि लवणीय मृदा का अधिकतम क्षेत्र गुजरात तथा इसके बाद उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में विद्यमान है।

लवण एवं क्षार प्रभावित मृदाओं की विशेषताएँ

मृदा के नमूनों को लवणीयता और क्षारीयता की पहचान के आधार पर उपचारित किया जाता है। संयुक्त राज्य कृषि विभाग (यूएसडीए) द्वारा सुझाए गए मानदण्डों के आधार पर इन मृदाओं का वर्गीकरण तालिका 3 में दिया गया है।

तालिका 2–भारत में लवण एवं क्षार प्रभावित मृदा का राज्यवार विस्तार

राज्य	लवणीय क्षेत्र (,000 हेक्टेयर)	क्षारीय क्षेत्र (,000 हेक्टेयर)	कुल क्षेत्रफल (,000 हेक्टेयर)
आंध्र प्रदेश	77.598	196.609	274.207
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	77	0	77
बिहार	47.301	105.852	153.153
गुजरात	1680.570	541.430	2222.000
हरियाणा	49.157	183.399	232.556
कर्नाटक	1.893	148.136	150.029
केरल	20	0	20
मध्य प्रदेश	0	139.720	139.720
महाराष्ट्र	184.089	422.670	606.759
ओडिशा	147.138	0	147.138
पंजाब	0	151.717	151.717
राजस्थान	195.571	179.371	374.942
तमिलनाडु	13.231	354.784	368.015
उत्तर प्रदेश	21.989	1346.971	1368.960
पश्चिम बंगाल	441.272	0	441.272
कुल	2956.809	3770.659	6727.468

तालिका 3–लवणीय, लवणीय–क्षारीय एवं क्षारीय मृदाओं के मुख्य गुण

मानदंड	लवणीय मृदायें	लवणीय–क्षारीय मृदायें	क्षारीय मृदायें
विद्युत चालकता	> 4.0	> 4.0	< 4.0
पीएच	< 8.5	> 8.5	> 8.5
विनिमेय सोडियम प्रतिशत	< 15	> 15	> 15

प्राकृतिक या प्राथमिक लवणता

लवणता, मुख्य रूप से मृदा या भूजल में लवण के लंबे समय तक संचय के परिणामस्वरूप होती है, जो आमतौर पर निम्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं के कारण होती है।

- मूल द्रव्य के अपक्षय से चट्टानों के अपघटन से विभिन्न प्रकार के घुलनशील लवण, मुख्य रूप से सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के क्लोराइड, और कुछ हद तक सल्फेट और कार्बोनेट बनते हैं। सोडियम क्लोराइड प्रमुख घुलनशील लवण है।
- हवा और बारिश के साथ मृदा में समुद्री लवण का जमाव दूसरा कारण है। वर्षाजल में 6 से 50 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. लवण होता है, यह भी मृदा लवणता में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
- मृदा में संग्रहित लवण की मात्रा मृदा के प्रकार के साथ बदलती रहती है, रेतीली मृदा के लिए कम और काली मृदा के लिए उच्च होने के कारण इसमें मृदा के खनिजों का प्रतिशत अधिक होता है। यह औसत वार्षिक वर्षा के साथ विपरीत रूप से भी बदलता है।

द्वितीयक/माध्यमिक या मानवजनित लवणता

लवणता प्राकृतिक या मानव–प्रेरित प्रक्रियाओं के माध्यम से होती है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा में घुले हुए लवण एक हद से ज्यादा संचयित होने पर पौधों की वृद्धि को रोकते हैं। माध्यमिक लवणीकरण मानव गतिविधियों (मानवजनित) से होता है, जो मृदा के जल संतुलन को प्रयुक्त जल (सिंचाई या वर्षा) और फसलों द्वारा उपयोग किए जाने वाले जल (वाष्पोत्सर्जन) के बीच बदलता है। द्वितीयक लवणीकरण के महत्वपूर्ण कारण हैं: भूमि समाशोधन और बारहमासी वनस्पतियों को वार्षिक फसलों के साथ बदलना; लवण युक्त सिंचाई जल का उपयोग; तथा अपर्याप्त जल निकासी वाली भूमि।

लवणीय मृदायें: मृदा में संतृप्ति अर्क की विद्युत चालकता 4 डेसी सीमेंस प्रति मीटर से अधिक, विनिमेय सोडियम प्रतिशत 15 से कम और पीएच 8.5 से कम होता है (तालिका 3)। पर्याप्त जल निकासी के साथ, इन मृदा में मौजूद लवण की अधिकता को लीचिंग द्वारा कम किया जा सकता है और उन्हें सामान्य स्थिति में लाया जा सकता है। लवणीय मृदा को अक्सर सतह पर लवणों की सफेद पपड़ी की उपस्थिति से पहचाना जाता है (चित्र 1)। इस मृदा में महत्वपूर्ण घुलनशील लवण सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के साथ कम मात्रा में पोटेशियम, क्लोराइड, सल्फेट और कभी–कभी नाइट्रेट होते हैं। अतिरिक्त घुलनशील लवणों की उपस्थिति और विनिमेय सोडियम की कमी अथवा अनुपस्थिति के कारण लवणीय मृदा आमतौर पर प्रवाहित होती है इसके परिणामस्वरूप लवणीय मृदा की पारगम्यता गैर–लवणीय मृदा के बराबर या उससे अधिक होती है।

चित्र 1: पश्चिमी राजस्थान में लवणीय मृदा

लवणीय-क्षारीय मृदायें: इन मृदाओं में संतृप्ति अर्क की विद्युत चालकता 4 डेसी सीमेन्स प्रति मीटर से अधिक, विनिमेय सोडियम प्रतिशत 15 से अधिक और पीएच 8.5 या अधिक होता है। ये मृदायें लवणीकरण और क्षारीकरण की संयुक्त प्रक्रिया के परिणामस्वरूप बनती हैं। जब तक अतिरिक्त घुलनशील लवण मौजूद होते हैं, ये मृदायें लवणीय मृदा के गुणों को प्रदर्शित करती हैं। अधिक घुलनशील लवणों के नीचे की ओर होने से इन मृदाओं के गुण लवणीय क्षारीय मृदाओं के समान हो जाते हैं। अधिक घुलनशील लवणों के निक्षालन पर, मृदा अत्यधिक क्षारीय (8.5 से अधिक पीएच) हो जाती है, मृदा कण फैल जाते हैं और मृदा जल के प्रवेश, संचलन और जुताई के लिए प्रतिकूल हो जाती है।

क्षारीय मृदाः इन मृदाओं में विनिमेय सोडियम प्रतिशत 15 से अधिक, विद्युत चालकता 4 डेसी सीमेन्स प्रति मीटर से कम और पीएच का मान 8.5 से 10 के मध्य होता है। विनिमेय सोडियम इस मृदा के भौतिक और रासायनिक गुणों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। जैसे–जैसे ईएसपी बढ़ता है, मृदा अधिक छितरी हुई हो जाती है (चित्र 2)। लवणीय, लवणीय–क्षारीय एवं क्षारीय मृदाओं के मुख्य गुण तालिका 3 में दर्शाये गए हैं।

चित्र 2: पश्चिमी राजस्थान में क्षारीय मृदा

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं के निर्माण के लिए उत्तरदायी कारक

शुष्क क्षेत्रों में, जहाँ वाष्पीकरण वर्षा से अधिक हो जाता है, घुलनशील लवण मृदा की सतह के पास जमा हो जाते हैं। शुष्क क्षेत्रों के भूजल की गुणवत्ता आमतौर पर लवणीय एव लवणीय–क्षारीय प्रवृति की होती है तथा इसमें काफी मात्रा में घुलनशील लवण होते हैं। यदि इस जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता है तो यह अच्छी मृदा की गुणवत्ता को भी खराब कर देता है। गुणवत्ता में क्षति की मात्रा न केवल सिंचाई के जल में लवण की उपलब्ध मात्रा पर निर्भर करती है बल्कि लवण की प्रकृति और मृदा के प्रकार पर भी निर्भर करती है। सोडियम लवण कैल्शियम और मैग्नीशियम लवणों की तुलना में अधिक हानिकारक होते हैं। इस तरह के सिंचाई जल के लगातार उपयोग से मृदा उत्पादकता अंत मे शून्य या नगण्य हो जाती हैं। सिंचाई जल के अत्यधिक उपयोग के साथ नहरों एवं डिग्गी से जल का केशिका क्रिया द्वारा स्त्राव और वाष्पीकरण के द्वारा उड़ने के कारण सतह पर लगातार लवण जमा हो जाते हैं, जिससे द्वितीयक लवणता तेजी से बढ़ती है। कमान क्षेत्रों में कई बार अपर्याप्त और खराब जल निकासी के कारण लवणीय मृदा बनती है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में अंतर करने के लिए मानदंड

लवणीय मृदाः लवणीय मृदा में प्राकृतिक घुलनशील लवणों की अत्यधिक सांद्रता होती है, मुख्य रूप से क्लोराइड, सल्फेट और कैल्शियम, मैग्नीशियम और सोडियम के कार्बोनेट पाये जाते हैं। विद्युत चालकता के माध्यम से लवण की कुल सांद्रता का अनुमान लगाया जाता है। लवण की सांद्रता जितनी अधिक होती है, विद्युत प्रवाह की चालकता दर उतनी ही अधिक होती है, जिसे लवणता के सूचकांक के रूप में मापा जाता है। उन्हें "सफेद क्षारीय मृदा" या "सोलोनचक" मृदा भी कहा जाता है। शुष्क अवधि के दौरान सतह पर मुख्य रूप से सफेद घुलनशील नमक मृदा की नमी के शुद्ध संचलन के साथ साथ मृदा की ऊपरी सतह पर आ जाते हैं। जहाँ जल के वाष्पित होने पर वे एक पपड़ी के रूप में रह जाते हैं। इन मृदाओं मे जल पारगम्यता की दर अपेक्षाकृत अधिक है। बीज अंकुरित नहीं होते हैं, अंकुरित होने पर पौधे मुरझा जाते हैं, फसल रूखी, रुग्ण हो जाती है और गंभीर रूप से प्रभावित क्षेत्रों में फसल पूरी तरह से खराब हो जाती है।

क्षारीय मृदा (सोडिक मृदा): क्षारीय मृदा में, उच्च सोडियम सामग्री के कारण, मृदा और कार्बनिक पदार्थ दोनों फैल जाते हैं, और इसका परिणाम मृदा के कणों की करीबी पैकिंग और कम छिद्र स्थान, जल और वातन के लिए कम

पारगम्यता वाली स्थिति पैदा होती है। खराब पारगम्यता और उच्च सोडियम सामग्री, क्षारीय मृदा को पुनः सामान्य बनाने के लिए बहुत ही मुश्किल और विकट परिस्थितियाँ पैदा करती है।

क्षारीय मृदा वाले खेत में दिखाई देने वाले प्रमुख लक्षण:

- गर्मियों के दौरान सतह पर सफेद नमक का जमाव जो अक्सर गीला होने पर गहरा काला रंग दिखाता है। इस विशेषता के कारण, उन्हें आमतौर पर "काली क्षार मृदा" कहा जाता है।
- जब मृदा को थोड़ा गीला किया जाता है, तो यह चिपचिपी हो जाती है और इसके सूखने पर सतह पर उथली दरारें विकसित हो जाती हैं तथा मृदा बहुत सख्त और सघन हो जाती है। बीज बोने के लिए उपयुक्त जुताई बनाने के लिए ढेले अत्यंत कठोर एवं सख्त हो जाते हैं, जिससे बीजों का अंकुरण प्रभावित होता है।
- जल जल्दी से भूमि में नीचे नहीं जाता है और लंबे समय तक कीचड़ की स्थिति में सतह पर खड़ा रहता है। जिससे कृषि क्रियाएँ करना बहुत मुश्किल हो जाता है।

लवणीय-क्षारीय मृदाएं: इन मृदाओं में लवण और क्षार दोनों होते हैं, तथा उन मृदाओं में जब घुलनशील लवणों का निक्षालन नीचे की ओर किया जाता है, तो पीएच 8.5 से ऊपर उठ जाएगा, लेकिन जब घुलनशील लवण फिर से जमा हो जाते हैं तो पीएच फिर से गिरकर 8.5 हो सकता है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं की पुनर्ग्रहण रणनीति

फसलों के जड़ क्षेत्रों से अतिरिक्त लवणों को वांछित–स्तर तक कम करना लवणीय मृदा के पुनर्ग्रहण का मूल सिद्धांत है। क्षारीय मृदा में, जिप्सम जैसे संशोधन के उपयुक्त माध्यम द्वारा सोडियम की मात्रा को कम करके जल निकासी को बढ़ाया जाता है। मृदा सुधार का कार्य शुरू करने से पहले मृदा के भौतिक–रासायनिक गुण, उपयोग किए जाने वाले सिंचाई जल की गुणवत्ता, मृदा प्रोफाइल में लवणों की प्रकृति और वितरण, भूजल का स्तर और जल निकासी की सुविधा, उपयुक्त संस्तुतित संसाधनों की उपलब्धता आदि की जानकारी होना नितांत आवश्यक है।

लवणीय मृदा के सुधार के लिए दृष्टिकोण

फसलों के जड़ क्षेत्रों से अतिरिक्त नमक को वांछित–स्तर तक या उससे निचले स्तर तक बनाये रखना लवणीय मृदा के पुनर्ग्रहण का मूल सिद्धांत है। अच्छी गुणवत्ता वाले पर्याप्त जल के अनुप्रयोग के साथ लीचिंग द्वारा जल निकासी मृदा लवणता की समस्या के स्थायी समाधान के दो आवश्यक घटक हैं।

निक्षालन: अच्छी गुणवत्ता वाले जल के प्रवाह द्वारा घुलनशील लवणों का भूमि की निचली सतहों की ओर परिवहन की प्रक्रिया निक्षालन कहलाती है। निक्षालन की आवश्यकता को जल के उस अतिरिक्त अंश के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसे एक निर्दिष्ट–स्तर पर मृदा की लवणता को नियंत्रित करने के लिए जड़ क्षेत्रों से निक्षालित किया जाना चाहिए। जल को मृदा की सतह पर एकत्रित रख कर निक्षालन करना सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला तरीका है। निक्षालन द्वारा लवणीय मृदाओं के सुधार हेतु लंबे समय तक मृदा की सतह पर जल एकत्रित रखने की अपेक्षा विशेष समयावधि में रूक–रूक कर मृदा की सतह पर जल एकत्रित रखना ज्यादा कारगार सिद्ध हुआ है। निक्षालन की पूर्ण सफलता के लिए भूजल–स्तर का पर्याप्त रूप से गहरा होना आवश्यक है।

जल निकासी: मृदा में समाहित अतिरिक्त जल को हटाना जल निकासी कहलाता है, जो दो प्रकार की हो सकती है: (1) सतही जल निकासी और (2) उप–सतही जल निकासी। सतही जल निकासी में भू–सतह पर जमा अतिरिक्त जल की निकासी की जाती है, जबकि उप–सतही जल निकासी में जड़ क्षेत्रों मे संचयित जल–स्तर को कम किया जाता है। उप–सतही जल निकासी के लिये टाइल द्वारा निर्मित नालियाँ बिछाई जाती हैं। नालियों को बिछाये जाने की गहराई की गणना सतह के नीचे मृदा की विभिन्न परतों की जलीय चालकता के आधार पर की जाती है।

लंबे समय तक प्रभावी रहने वाली उप–सतही जल निकासी प्रणाली में छिद्रित पीवीसी पाइप या मृदा की टाइलें एक ढाल में भूमिगत बिछाकर संचित लवण को जल के साथ एक समान निकास मार्ग क्षेत्र से बाहर निकाल दिया जाता है। निष्कासित जल की गुणवत्ता उपयुक्त पायी जाने पर इसे अच्छी गुणवत्ता वाले जल के साथ मिलाकर फसलोत्पादन के लिए पुनर्चक्रित किया जा सकता है।

उप–सतही जल निकासी प्रणाली की सफलता डिजाइन मापदंडों विशेष रूप से पाइप के व्यास, गहराई और पार्श्व के बीच की दूरी, भराव सामग्री, निरीक्षण और निकास द्वार की व्यवस्था आदि के सटीक चयन पर निर्भर करती है।

उचित जल प्रबंधन और फसल का चयन

मृदा की लवणता में और भी सुधार हेतु फसल प्रणाली महत्वपूर्ण है। मृदा सुधार के प्रारंभिक वर्षों के दौरान अत्यधिक लवण सहिष्णु किस्मों वाली फसलों की खेती से संतोषजनक पैदावार ली जा सकती है। उच्च, मध्यम और निम्न लवण सहिष्णु फसलें नीचे सूचीबद्ध हैं:

- **उच्च लवण सहिष्णुः** सेसबनिया, चावल, गन्ना, जई
- **मध्यम लवण सहिष्णुः** अरंडी, कपास, ज्वार, बाजरा, मक्का, सरसों, गेहूँ
- **निम्न लवण सहिष्णुः** दाल, मटर, सनहेम्प, चना, अलसी, तिल

क्षारीय मृदाओं के सुधार के लिए दृष्टिकोण

मृदा के सुधार का मूल सिद्धांत उन उपायों को अपनाना है, जिनके द्वारा विनिमेय सोडियम को कैल्शियम से प्रतिस्थापित कर लवण के रूप में जड़ क्षेत्र से बाहर किया जा सके। संशोधनों का उपयोग और पर्याप्त निक्षालन किसी भी सुधार उपायों के लिए पूर्वापेक्षाएँ हैं।

कम लागत और आसान उपलब्धता के कारण जिप्सम और सल्फर को व्यापक और गहन क्षारीय मृदाओं के सुधार हेतु उपयोग में लिया जाता रहा है। जिप्सम से सोडियम निहित मृदा कैल्शियम निहित मृदा में परिवर्तित हो जाती है, जिससे मृदा की पीएच कम हो जाती है और इसकी भौतिक स्थिति में सुधार होता है। क्षारीय मृदा में सुधार के लिए बड़ी मात्रा में जिप्सम की आवश्यकता होती है। औसतन प्रत्येक मिली लीटर समकक्ष सोडियम को प्रतिस्थापित करने के लिए 1.7 टन जिप्सम या 0.32 टन सल्फर की आवश्यकता होती है। प्रकृति में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध आयरन पाइराइट भी क्षारीय मृदा के लिए एक किफायती संशोधक है। कुछ क्षेत्रों में प्रेसमड और बेसिक स्लैग के साथ शीरे का प्रयोग भी अच्छा संशोधक सिद्ध हुआ है।

जैविक एवं हरी खाद का प्रयोग

फसल अवशेष और अन्य जैविक सामग्री का भी क्षारीय मृदा के सुधार के लिए उपयोग किया जाता है। कार्बनिक पदार्थों के उपयोग से पीएच को कम करने, मृदा की संरचना में सुधार और फसलों को नाइट्रोजन की उपलब्धता में मदद मिलती है। अच्छी गुणवत्ता वाले जल के अनुप्रयोग के साथ निक्षालन तकनीक को अपनाने से मृदा में बेहतर सुधार होता है। क्षारीय मृदा के प्रबंधन के लिए फसलों के उचित चुनाव के साथ फसल प्रबंधन की सर्वोत्तम अनुकूल विधियों को अपनाना आवश्यक है। उच्च विनिमेय सोडियम के प्रति सहिष्णु फसलों को उगाने से मृदा सुधार के प्रारंभिक वर्षों के दौरान उचित लाभ मिलता है। विनिमेय सोडियम के विभिन्न स्तरों पर क्षार सहिष्णु फसलों की सूची तालिका 4 में प्रस्तुत की गई है।

तालिका 4. मृदा की क्षारीयता के सापेक्ष सहिष्णु फसलें

विनिमेय सोडियम प्रतिशत स्तर	उपयुक्त क्षार सहिष्णु फसलें
10 से 15 प्रतिशत	कुसुम, मटर, मसूर, अरहर–मटर, उड़द, केला
15 से 20 प्रतिशत	बंगाल चना, सोयाबीन, पपीता, मक्का, साइट्रस
20 से 25 प्रतिशत	मूंगफली, लोबिया, प्याज, बाजरा, अमरूद, बेल, अंगूर
25 से 30 प्रतिशत	अलसी, लहसुन, ग्वार, पामारोसा, लेमन घास, ज्वार, कपास
30 से 50 प्रतिशत	सरसों, गेहूँ, सूरजमुखी, बेर, करोंदा, फालसा, वेटिवर, ज्वार, बरसीम
50 से 60 प्रतिशत	जौ, सेसबनिया, पैराग्रास, रोड्स घास
60 से 70 प्रतिशत	चावल, चुकंदर, करनाल घास

काजरी, जोधपुर द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयास

थार मरूस्थल देश के उत्तर पश्चिमी राज्यों यथा राजस्थान, गुजरात, पंजाब व हरियाणा में फैला है, जिसमें राजस्थान का लगभग 62 प्रतिशत भू–भाग आता हैं। पश्चिमी राजस्थान के 80 प्रतिशत से अधिक भू–भाग में उपलब्ध भूजल बहुत गहराई पर व लवणीय/क्षारीय है। केवल 10 से 20 प्रतिशत क्षेत्र में नदी व नालों के किनारे स्थित कुओं/टयूबवेल में अच्छी गुणवत्ता का भूजल उपलब्ध है। लवणीय/अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट वाले भूजल से सिंचित मृदा में लवणीयता/क्षारीयता का प्रभाव बढ़ने से फसल की उपज कम हो जाती है। अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट वाले जल से सिंचित खेतों की क्षारीय मृदा के सुधार एवं प्रबन्धन के लिए बाड़मेर जिले के बालोतरा क्षेत्र तथा जोधपुर जिले के औसियां क्षेत्र में किसानों के खेतों पर अध्ययन प्रदर्शन लगाये गए। प्रत्येक अध्ययन प्रदर्शन (किसान के खेत) पर एक–एक बीघा (40 मी. x 40 मी.) के चार क्षेत्रों का जिप्सम द्वारा उपचार के लिए चुनाव किया गया। खेत की मृदा व सिंचाई के लिए उपलब्ध जल का रासायनिक विश्लेषण कर मृदा में जिप्सम की आवश्यकता व अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की मात्रा ज्ञात करने के उपरान्त उपचार के लिए जिप्सम की आवश्यक मात्रा की गणना की गई। पहली वर्षा के बाद, खेत मे मृदा के नरम होने पर क्रमशः 0, 25, 50 और 100 प्रतिशत जिप्सम की मात्रा से उपचारित किया गया। अध्ययन के दौरान किसानों के खेतों में खरीफ की कोई फसल नहीं लगायी गई। रबी में किसानों के खेतों पर गेहूँ की फसल (राज–3077) लगायी गई। फसल की आवश्यकता के अनुसार नाइट्रोजन एवं फास्फोरस उर्वरक उपयोग में लिये गये तथा अन्य शस्य क्रियायें जैसे सिंचाई, निराई, गुड़ाई, खरपतवार नियंत्रण आदि समयानुसार की गई। इस अध्ययन प्रदर्शन के अन्तर्गत सभी किसानों के खेतों में जिप्सम द्वारा उपचारित खेत में गेहूँ का अंकुरण जिप्सम अनुपचारित खेत की अपेक्षा 35 से 62 प्रतिशत तक अधिक पाया गया। इसमें मुख्यतः कुओं के जल का पी.एच. 7.6 से 8.4 एवं अपशिष्ट सोडियम कार्बोनेट 3.8 से 7.7 मिली समतुल्य प्रति लीटर दर्ज किया गया, जिसमें मृदा पूर्णतया क्षारीय गुण (पी.एच. 9.2 से 9.8) दर्शाने लगी। गेहूँ की पैदावार और उपज संबंधित गुणों जैसे पौधों की लंबाई, टिलर्स प्रति पौधे एवं पत्तियाँ प्रति पौधे आदि पर जिप्सम के श्रेणीकृत उपयोग का सकारात्मक प्रभाव देखा गया। हालाँकि, 100 एवं 50 प्रतिशत जिप्सम उपयोग से इन पैदावार और उपज संबंधित गुणों में सांख्यिकीय रूप से सार्थक अंतर नहीं पाया गया। जिप्सम के उपयोग से गेहूँ की उपज और पुआल की पैदावार में भी सार्थक वृद्धि हुई। इन सभी किसानों के जिप्सम उपचारित खेतों में 100 एवं 50 प्रतिशत आवश्यक जिप्सम के उपयोग से जिप्सम अनुपचारित खेत की तुलना में गेहूँ की उपज में औसतन क्रमशः 46 एवं 40 प्रतिशत तक वृद्धि पायी गई।

जिप्सम अनुपचारित खेत में गेहूँ की फसल

जिप्सम उपचारित खेत में गेहूँ की फसल

साथ ही 100 प्रतिशत आवश्यक जिप्सम उपचारित खेत की मृदा में पी.एच. का औसत मान जिप्सम अनुपचारित खेत की अपेक्षा 9.39 से घटकर 8.74 हो गया। मृदा में उपलब्ध फास्फोरस, लोहा और जिंक की उपलब्धता सभी खेतों में जिप्सम के श्रेणीकृत उपयोग के साथ काफी बढ़ गई। फास्फोरस, लोहा और जिंक की अत्यधिक मात्रा क्रमशः 11.71 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर, 2.92 और 0.54 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. 100 प्रतिशत आवश्यक जिप्सम उपचारित खेत में दर्ज की गई जो जिप्सम अनुपचारित खेत की अपेक्षा क्रमशः 26, 33 और 38 प्रतिशत अधिक पायी गई।

निष्कर्ष

पश्चिमी राजस्थान के अधिकांश भू–भाग के कुओं/टयूबवेल से उपलब्ध भूजल में लवण/अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक होती है जिससे सिंचाई के फलस्वरूप मृदा मे क्षारीयता बढ़ जाती है व फसलों की उपज कम हो जाती है। एक ही गुणवत्ता के लवणीयता/अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट वाले जल से सिंचित दुमट व मटियार गठन की तुलना में रेतीली मृदाओं में क्षारीयता शीघ्र बढती है। अतः मृदा सुधार व प्रबंधन के लिये शुष्क क्षेत्र की जलवायु, भूजल गुणवत्ता एवं मृदा गठन को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण के अनुकूल उन्नत तकनीकों को अपनाने से अच्छे मृदा स्वास्थ्य के साथ साथ अच्छी उपज भी मिलती है। विशेष रूप से पुराने सिंचित क्षेत्रों में फसल उत्पादकता में व्यवस्थित सुधार उपायों को अपनाने से ही वृद्धि संभव है। इस उद्देश्य के लिए निवेश अत्यधिक व्यवहार्य है, क्योंकि समान स्तर के आदानों के साथ उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि देखी जाती है। वाणिज्यिक एवं नकदी फसलें और अधिक उपज देने वाले बागानों आदि को प्राथमिकता के साथ अपनाया जाना चाहिए, जिसके लिए सरकारी योजनाएँ एवं ऋण सुविधा उपलब्ध हैं।

★ ★ ★

भूमि उत्पादकता में सुधार और भूमि क्षरण तटस्थता प्राप्त करने में जैविक मृदा कार्बन की भूमिका

नवरतन पंवार[1], श्रवण कुमार[2] एवं महेश कुमार[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

विश्व के भू–संसाधनों की स्थिति लगातार चिंताजनक होती जा रही है। वर्ष 2011 में, खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुमान के अनुसार विश्व के 33 प्रतिशत भूमि और जल संसाधन अत्यधिक या मध्यम रूप से खराब या निम्नीकृत हैं (भूमि निम्नीकरण को पारिस्थितिक तंत्र की कार्यक्षमता के नुकसान के रूप में परिभाषित किया गया है जो जैविक या आर्थिक उत्पादकता को प्रभावित करता है, प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ संयोजन में अस्थिर मानव गतिविधि के कारण)। विशेष रूप से कृषि योग्य भूमि में भविष्य के खतरे की ओर इंगित करती है। हाल के अनुमान बताते हैं कि दुनिया भर में 52 प्रतिशत कृषि भूमि खराब या निम्नीकृत अवस्था में है। यह देखते हुए कि अधिकांश भौमिक कार्बन मृदा में जमा हो जाता है, मृदा में संभावित कार्बन का ह्रास जो वर्तमान में मृदा में संचयित है, नुकसान से परे एक अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन के कारण मिट्टी के स्वास्थ्य पर एक खतरा बन गया है। भूमि क्षरण के परिणामस्वरूप वैश्विक आर्थिक नुकसान प्रतिवर्ष 10.6 ट्रिलियन अमरीकी डॉलर होने का अनुमान है। अकेले उप–सहारा अफ्रीका में 180 मिलियन लोग भूमि क्षरण से प्रभावित हैं।

भूमि क्षरण के परिमाण और दर के चौंका देने वाले तथ्यों तथा खाद्य और रेशा उत्पादन और मानव कल्याण पर इसके निरंतर नकारात्मक प्रभाव से, भविष्य में भूमि क्षरण से बचने के लिए एक आह्वान को उत्प्रेरित किया, जिसका लक्ष्य वर्तमान में हो रहे भूमि क्षरण को कम करना, और पूर्व में हो चुके भूमि क्षरण को पलटना रहा। वर्ष 2015 में दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने भूमि क्षरण तटस्थता (एलडीएन) के महत्व को और मजबूत किया। सतत् विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को संयुक्त राष्ट्र महासभा और एसडीजी द्वारा लक्ष्य 15.3 के तहत विशेष रूप से "मरुस्थलीकरण का मुकाबला करना, भूमि सहित खराब भूमि और मृदा को बहाल करना", "मरुस्थलीकरण, सूखे और बाढ़ से प्रभावित और भूमि क्षरण–तटस्थ दुनिया को प्राप्त करने का प्रयास" को वर्ष 2030 के लिए अपनाया गया।

सतत् विकास के लिए 2030 एजेंडा के लक्ष्यों पर समय तेजी से बढ़ रहा है और पेरिस समझौते के राष्ट्रीय–स्तर पर निर्धारित योगदान और वास्तव में ग्लोबल वार्मिंग को 1.5 डिग्री सेल्सियस से नीचे रखने के लिए आवश्यक उत्सर्जन स्तरों के बीच एक खतरनाक अंतर बढ़ रहा है। भूमि क्षरण तटस्थता के लिए हमारे लक्ष्यों को प्राप्त करना संयुक्त राष्ट्र महासभा और एसडीजी द्वारा लक्ष्य 15.3 में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मृदा में जैविक कार्बन एक आदर्श संकेतक और मृदा के अन्य गुणधर्मों के प्रति मुख्य भूमिका प्रदान करता है, न केवल इसलिए कि यह भूमि प्रबंधन प्रथाओं के प्रति उत्तरदायी है, अपितु इसलिए कि यह प्रणालियाँ बहुत व्यापक रूप में सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ के निर्माण में भाग ले सकती हैं।

भारत भूमि क्षरण, या मृदा का खेती के लिए अनुपयुक्त होने की गंभीर समस्या का सामना कर रहा है। भूमि के लगभग 96.4 मिलियन हेक्टेयर (29 प्रतिशत) क्षेत्र को खराब/खेती अनुपयुक्त पाया गया है और अभी तक पिछले दो वर्षों के आंकलन से ज्ञात हुआ है कि 23 प्रतिशत भूमि खराब हो गई है, ज्यादातर शुष्क क्षेत्रों के बाहर के क्षेत्रों में, अर्थात प्रत्येक 4 से 5 हेक्टेयर भूमि में लगभग 1 हेक्टेयर भूमि खराब है। इसके अतिरिक्त, 75 प्रतिशत भूमि की प्राकृतिक अवस्था बदल गई है और प्रत्येक 4 हेक्टेयर

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक

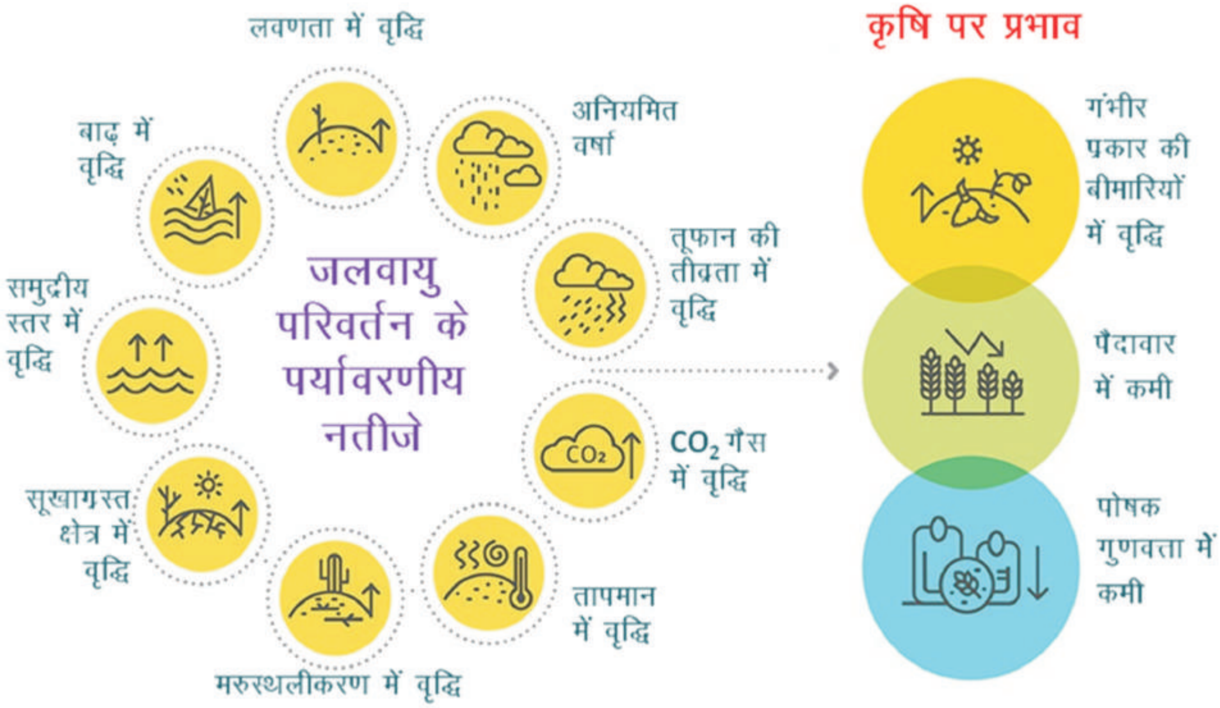

जलवायु परिवर्तन का खाद्य प्रणाली पर प्रभाव

उत्पादक भूमि में से यह लगभग 3 हेक्टेयर क्षेत्र में पाया गया है। इतना ही नहीं, ये बदलाव पिछले 50 वर्षों में मुख्य रूप से कृषि के लिए हुये हैं। हाल ही में, भारत ने संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनएनसीसीडी) के सीओपी 14 के दौरान, मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए अपनी महत्वाकांक्षा को जताया, जिसके तहत् उसकी भूमि क्षरण/निम्नीकरण की स्थिति के अंतर्गत 21 से 26 मिलियन हेक्टेयर तक क्षेत्र कम किया जाएगा। देश की नम्नीकृत भूमि के क्षेत्र का 10 प्रतिशत भाग वर्ष 2030 तक पुनः स्थापित करने के लिये सहमत हो गया है। इससे पहले, भारत स्वैच्छिक रूप में 'बॉन चौलेंज' में शामिल हुआ और देश में वर्ष 2020 तक 13 मिलियन हेक्टेयर खराब और वनों की कटाई वाली भूमि का जीर्णोद्धार करने का संकल्प लिया गया तथा अतिरिक्त 8 मिलियन हेक्टेयर भूमि का जीर्णोद्धार 2030 तक करने का भी भारत का संकल्प एशिया महाद्वीप के देशों में सबसे बड़े संकल्पों में से एक रहा।

भूमि कृष्णा तटरेखा (एलडीएन)

भूमि क्षरण तटस्थता को एक ऐसी अवस्था के रूप में परिभाषित किया गया है, जहाँ पारिस्थितिकी तंत्र कार्यों और सेवाओं का समर्थन करे और खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने के लिए आवश्यक भूमि संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता स्थिर हो या विशिष्ट सामयिक और स्थानिक पैमाने और पारिस्थितिक तंत्र के भीतर बढ़ जाती हो। भूमि क्षरण तटस्थता भूमि प्रबंधन नीतियों और प्रथाओं में एक आदर्श बदलाव का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक अनूठा दृष्टिकोण है, जो अल्पीकरण/निम्नीकृत क्षेत्रों के पुनः स्थापन के साथ उत्पादक भूमि की अपेक्षित हानि को संतुलित करता है। यह रणनीतिक रूप से भूमि उपयोग योजना के संदर्भ में भूमि के संरक्षण, 3/6 को स्थायी रूप से प्रबंधित और पुर्नस्थापित करने के उपायों को रखता है। क्योंकि भूमि का क्षेत्रफल निश्चित है, भूमि संसाधनों को नियंत्रित करके और भूमि में उपयोग कारकों या वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को दोहन करने के लिए प्रतिस्पर्धा लगातार बढ़ती रहती है। इसमें सामाजिक और राजनीतिक अस्थिरता पैदा करने, गरीबी, संघर्ष और प्रवास को बढ़ावा देने की क्षमता है। मृदा के कार्बनिक कार्बन को एलडीएन के तीन संकेतकों में से एक के रूप में चुना गया था। अन्य वैश्विक एलडीएन संकेतक भूमि कवर परिवर्तन और भूमि

उत्पादकता गतिशीलता (एलपीडी) (शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता) के रूप में मापा जाता हैं। मृदा का कार्बनिक कार्बन एक मौलिक पारिस्थितिकी तंत्र का स्वास्थ्य संकेतक है, और इसकी बहुक्रियाशील भूमिकाओं के साथ, भूमि प्रबंधन के प्रति संवेदनशीलता, और सभी तीन रियो सम्मेलनों के मिशनों के लिए इसकी प्रत्यक्ष प्रासंगिकता, उपयुक्त टिकाऊ भूमि प्रबंधन (एसएलएम) प्रौद्योगिकियों की पहचान के लिए एक महत्वपूर्ण मानदंड का गठन करती है जो एलडीएन की उपलब्धि में योगदान करती है।

मृदा कार्बनिक कार्बन

मृदा कार्बनिक कार्बन (एसओसी), भौमिक जीवमंडल में सबसे बड़ा कार्बन पूल एवं वैश्विक कार्बन चक्र का एक महत्वपूर्ण घटक है। एसओसी मृदा कार्बनिक पदार्थ (एसओएम) का प्रमुख घटक है, जो मृदा की उत्पादकता और पारिस्थितिकी तंत्र प्रक्रियाओं की एक विस्तृत श्रृंखला में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एसओएम में सुक्ष्मजीवी जैवभार और जटिल जैविक उपापचय प्रक्रियाओं के कई उपोत्पादों के साथ–साथ अपघटन के विभिन्न चरणों में मृदा में पौधों और जानवरों के अवशेष शामिल हैं। एसओसी मृदा के कार्बनिक पदार्थ को मापने का एक योग्य घटक है। कार्बनिक पदार्थ अधिकांशतया तथा मिट्टी के द्रव्यमान का सिर्फ 2 से 10 प्रतिशत भाग बनाते हैं और कृषि मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कार्बनिक पदार्थ पोषक तत्व अवधारण और रूपान्तरण, मृदा की संरचना, नमी प्रतिधारण और उपलब्धता, प्रदूषकों के क्षरण, कार्बन के अनुक्रमण और मृदा के लचीलेपन में योगदान देता है।

मृदा कार्बनिक कार्बन के अलावा, मृदा अकार्बनिक कार्बन (एसआईसी) भी शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की मृदा में कार्बन का एक प्रमुख रूप है और इसमें कैल्सियम, मैग्नेशियम, पोटेशियम और सोडियम के कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट शामिल हैं। वास्तव में, एसआईसी शुष्क भूमि में कुल मृदा कार्बन का एक बड़ा अनुपात दर्शाता है और वैश्विक कार्बन चक्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मृदा कार्बनिक कार्बन का महत्व

कार्बनिक कार्बन कृषि क्षेत्र में कार्बन चक्र को बड़े पैमाने पर प्रभावित करने की क्षमता रखता है, अक्सर कार्बन के स्रावित होने के माध्यम से, किसानों की व्यक्तिगत क्षेत्रों के लिए एसओसी को बनाए रखने और बढ़ाने में रूचि होती है क्योंकि एसओसी स्तर बढ़ने पर मृदा और उपज में सुधार होता है। उच्च एसओसी मृदा की संरचना या जुताई को बढ़ावा देता है जिसका अर्थ है कि भौतिक गुणधर्मों में अधिक से अधिक स्थिरता आए। यह मृदा के वातन (ऑक्सीजन), जल निकासी और प्रतिधारण क्षमता में सुधार करता है तथा क्षरण और पोषक तत्वों के निक्षालन (लीचिंग) के जोखिम को कम करता है। मृदा की कार्बनिक कार्बन रासायनिक संरचना और जैविक उत्पादकता के लिए भी महत्वपूर्ण है, जिसमें एक क्षेत्र की उर्वरता और पोषक तत्व धारण क्षमता शामिल है। जैसे–जैसे मृदा में कार्बन का भंडारध्संचय बढ़ता है, कार्बन “अनुक्रमित” (सीक्वेस्ट्रेसन) होता है, और कटाव और निक्षालन के माध्यम से अन्य पोषक तत्वों के नुकसान का जोखिम कम हो जाता है। मृदा के कार्बनिक कार्बन में वृद्धि से आमतौर पर अधिक स्थिर कार्बन चक्र और समग्र कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है, जबकि मृदा की भौतिक क्षति के कारण आसपास के वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में कार्बन का शुद्ध नुकसान हो सकता है।

मृदा कार्बनिक कार्बन पारिस्थितिकी तंत्र को सेवाएं प्रदान करता है जो मानव कल्याण के लिए अति–आवश्यक हैं, उदाहरण के लिए जलवायु विनियमन, जल आपूर्ति और विनियमन, पोषक चक्रण, क्षरण के संरक्षण और जैव विविधता में वृद्धि। इसके अलावा, मृदा कार्बनिक कार्बन मृदा के कई गुणों पर प्रभाव डालता है, यथा जल धारण क्षमता, मृदा ढेलों में स्थिरता, कुल नाइट्रोजन, पीएच और धनायन विनिमय क्षमता। मृदा की कार्बनिक कार्बन बढ़ाने से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम हो सकता है, मृदा स्वास्थ्य में सुधार के माध्यम से कृषि उत्पादकता में लाभ हो सकता है और पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है। दीर्घकालिक प्रबंधन प्रथाओं के तहत मृदा की कार्बनिक कार्बन पूल मृदा की गुणवत्ता, कार्बन अनुक्रमण पथ और

मृदा स्वास्थ्य पर मृदा कार्बनिक कार्बन का प्रभाव

फसल उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। यह प्रदर्शित किया गया है कि मृदा की उच्च कार्बनिक कार्बन–स्तर मृदा की उर्वरता और स्वास्थ्य को बढ़ा सकते हैं, जल के अंतःस्पदंन में सुधार कर सकते हैं, मृदा की संरचना में सुधार कर सकते हैं, नमी बनाए रखने और फसल की उपज में वृद्धि कर सकते हैं। मृदा कार्बनिक कार्बन अंश और मृदा की पोषक स्थिति और फसल की उपज के बीच एक सकारात्मक संबंध बताया गया है। चूंकि एसओसी अंश लगभग सभी मृदाओं के कार्यों को प्रभावित करता है और इसे आसानी से मापा जा सकता है, यह पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की आपूर्ति के लिए मृदा की क्षमता का एक उपयुक्त संकेतक हो सकता है।

मृदा के प्रकार

- मृदा में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थ मृदा को बांधते है, जो इसे टूटने से बचाने में मदद करते है या रोगाणुओं और अन्य जीवों द्वारा पहुँच को सीमित करते हैं।
- मोटी बनावट वाली रेतीली मृदा में कार्बनिक पदार्थ सूक्ष्मजीवों के हमले से सुरक्षित नहीं होते हैं और तेजी से विघटित हो जाते हैं।

जलवायु

- मृदा के समान प्रकार और प्रबंधन के साथ तुलनीय कृषि प्रणालियों में, वर्षा के साथ मृदा कार्बनिक पदार्थ बढ़ जाते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि बढ़ती वर्षा पौधों की अधिक वृद्धि का समर्थन करती है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा में अधिक कार्बनिक पदार्थ जमा होते हैं।
- तापमान कम होने पर कार्बनिक पदार्थ बहुत धीरे–धीरे विघटित होते हैं। आमतौर पर नम परिस्थितियों में, तापमान में प्रत्येक 10° सेल्सियस की वृद्धि कार्बनिक पदार्थों के अपघटन की दर को दोगुना कर देती है। इसका मतलब है कि नम एवं गर्म परिस्थितियों में अक्सर जैविक आदानों का सबसे तेजी से अपघटन होता है।

भूमि और मृदा प्रबंधन

- बेहतर जल उपयोग दक्षता और कृषि विज्ञान प्रबंधन के माध्यम से फसल और चरागाह जैवभार को अधिकतम करने से कार्बनिक पदार्थ आदान में वृद्धि होगी।
- चूंकि शीर्ष 0 से 10 से.मी. मृदा में कार्बनिक पदार्थों का एक बड़ा हिस्सा मौजूद है, मृदा की सतह को क्षरण से बचाना मृदा के कार्बनिक पदार्थों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।
- संरक्षित मृदा की जुताई पहले से संरक्षित कार्बनिक पदार्थों को सूक्ष्मजीवी अपघटन के लिए उजागर करके मृदा के कार्बनिक पदार्थों के भंडार को कम करती है।
- कृषि के बाहर के जैविक अवशेष, जैसे खाद, पुआल और चारे को मिलाने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ सकते हैं। आर्थिक व्यवहार्यता स्थापित करने के लिए कृषि संबंधी लाभों को मापा जाना चाहिए।
- भू–दृश्य जल उपलब्धता से जुड़े जैवभार उत्पादन को प्रभावित कर सकता हैं।
- मृदा और कार्बनिक पदार्थों को नीचे ढलान के माध्यम से स्थानांतरित करने से भू–दृश्य के निचले हिस्सों में मृदा के कार्बनिक पदार्थों के भंडार में वृद्धि हो सकती है।
- मृदा की कमी पौधों की वृद्धि और अपघटन दर को कम करती है। यह अधिक स्थिर अंशों में जाने वाले कार्बनिक पदार्थों की मात्रा और परिवर्तन दर को धीमा कर सकता है।
- सूक्ष्मजीव और विशेष रूप से बैक्टीरिया अत्यधिक अम्लीय या क्षारीय मृदा में खराब रूप से विकसित होते हैं और फलस्वरूप इस मृदा में कार्बनिक पदार्थ धीरे–धीरे टूट जाते हैं।

कृषि मृदा में कार्बनिक कार्बन स्टाक बढ़ाना

कृषि प्रणालियाँ चार प्रमुख कार्यों के रखरखाव पर निर्भर हैं, पोषक तत्व चक्रण, कार्बन परिवर्तन, मृदा की संरचना का रखरखाव और कीटों और रोगों का नियमन। कृषि मृदा में मृदा के कार्बनिक कार्बन पदार्थ बढ़ने से खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन के शमन में योगदान होता है। मृदा की उर्वरता और जल प्रतिधारण में एसओएम की प्रमुख भूमिका होती है। इसलिए, एसओएम परोक्ष रूप से कृषि उत्पादकता और फलस्वरूप खाद्य सुरक्षा में योगदान देता है। यह प्रबंधन उपायों एसओसी भागीदारी को प्रभावित कर सकते हैं या तो एसओसी के नुकसान को कम कर सकते हैं या कार्बन आदान को मृदा में बढ़ा सकते हैं। जब मृदा में कार्बनिक कार्बन आदान खनिज या क्षरण द्वारा कार्बनिक कार्बन उत्पाद से बड़ा होता है, तो मृदा का कार्बनिक कार्बन बढ़ जाता है। कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में एसओसी के प्रबंधन के लिए तकनीकी विकल्प नीचे दिए गए हैं।

बिना जुताई और संरक्षण कृषि

मृदा कार्बनिक पदार्थ को मृदा की गुणवत्ता और स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण संकेतक माना जाता है जो फसल उत्पादन उपायों जैसे जुताई से प्रभावित हो सकता है। जुताई में बड़े समुच्चय को तोड़कर, फसल अवशेषों को मिलाकर और संरक्षित एसओसी को मृदा के सूक्ष्मजीवों में उजागर करके कार्बन खनिजकरण की दर को बढ़ाने की क्षमता है। सामान्य तौर पर, जुताई को मृदा समुच्चय के यांत्रिक और वर्षा प्रेरित व्यवधान और कार्बन डाइऑक्साइड के परिणामी विमोचन के परिणामस्वरूप एसओसी खनिजकरण को बढ़ाने के लिए माना जाता है। इसलिए, पारंपरिक जुताई की तुलना में एसओसी स्टॉक को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए संरक्षण जुताईधबिना जुताई को एक उपयुक्त अभ्यास माना गया है। पारंपरिक जुताई की तुलना में मृदा की जुताई को कम करके और फसल अवशेषों के संचय को बढ़ाकर एसओसी की आत्मसात को बढ़ा सकते हैं जैसे संरक्षण जुताई उपाय।

वैश्विक मेटा–विश्लेषणों और समीक्षाओं ने हाल ही में पुष्टि की है कि एसओसी स्टॉक मृदा की ऊपरी परतों (0 से 15 या 0 से 20 से.मी.) में बिना जुताई के बढ़ता है, लेकिन आमतौर पर एसओसी स्टॉक पर 30 से.मी. गहराई या इससे कम गहराई पर गैर–सार्थक प्रभाव पड़ता है।

कार्बन अनुक्रमण के अलावा, संरक्षण जुताई कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को कम कर सकती है। मृदा कार्बनिक कार्बन का संचय वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड के अनुक्रम के साथ एक सकारात्मक सहसंबंध प्रदर्शित करता है, जबकि मृदा कार्बनिक कार्बन का ऑक्सीकरण, जुताई जैसी प्रथाओं के परिणामस्वरूप, कृषि क्षेत्रों से कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में योगदान कर सकता है। उदाहरण के लिए, पारंपरिक जुताई में कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन, दोमट मृदा की तुलना में 29 प्रतिशत अधिक था।

सिंचाई

अलग—अलग परिदृश्यों में एसओसी अपघटन पर सिंचाई का समान प्रभाव हो सकता है, लेकिन, शुष्क ग्रीष्मकाल वाले आर्द्र क्षेत्रों की तुलना में प्राथमिक उत्पादन पर इसका प्रभाव शुष्क और अर्ध—शुष्क क्षेत्रों में बहुत अधिक होने की संभावना है। ऐसा पाया गया है कि सिंचाई का रेगिस्तानी मृदा और अर्ध—शुष्क क्षेत्रों में एसओसी स्टॉक पर सकारात्मक प्रभाव होता है, लेकिन आर्द्र क्षेत्रों में कोई सुसंगत प्रवृत्ति नहीं देखी गई। इसके अलावा, इस बात पर बल दिया गया है कि एसओसी स्टॉक जलवायु और प्रारंभिक एसओसी अंश पर निर्भर हैं।

भू-सतह के अंदर आदानों का उपयोग

भू—सतह के नीचे कार्बनिक कार्बन आदान, जिसमें जड़ और संबंधित आदान शामिल हैं, भू—सतह के ऊपर के आदान की तुलना में मृदा के कार्बनिक कार्बन में अधिक योगदान करते हैं। लंबी अवधि के प्रायोगिक परिणामों ने संकेत दिया कि जड़ से व्युत्पन्न कार्बन जमीन के ऊपर के पौधे के अवशेषों से प्राप्त कार्बन से 2.3 गुना अधिक था।

जैविक सुधारक

कार्बनिक सुधारक आदान एसओएम और एसओसी के निर्माण को बढ़ा सकते हैं। कार्बनिक सुधारक के अनुप्रयोग ने ऊपरी मृदा में एसओसी को प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप कार्बन स्टॉक में चार गुना वृद्धि हुई। जैविक अवशेषों और कचरे को खाद बनाने, मिथेनाइजेशन या पायरोलिसिस के बाद ताजा कार्बनिक पदार्थ के रूप में मृदा में मिलाया जा सकता है। हालांकि, दीर्घकालिक एसओसी पर अवशेष गुणवत्ता का प्रभाव अभी भी बहस का विषय है। पिछले अध्ययनों ने संकेत दिया है कि दीर्घ—कालिक यौगिकों जैसे लिग्निन की तुलना में विशेष रूप से सबसे अधिक गतिशील एवं आसानी से सड़ सकने वाले यौगिक एसओएम में अधिक योगदान करते हैं। इस खोज के लिए तीन स्पष्टीकरण हैं, यथा 1) लंबे समय तक चलने वाला एसओएम मुख्य रूप से सूक्ष्मजीवी अशं से प्राप्त होता है, 2) सब्सट्रेट जो आसानी से सड़ने योग्य होते हैं, उन्हें उच्च सूक्ष्मजीवी कार्बन उपयोग दक्षता के साथ संसाधित किया जाता है, और 3) घुलनशील यौगिकों को खनिज सतहों के बीच संरक्षित किया जा सकता है।

एकीकृत और विविध फसल/कृषि प्रणालियाँ

मोनोकल्चर की तुलना में, फसल विविधता की शुरूआत एसओसी को बढ़ाती है, जो मृदा के स्वास्थ्य में सुधार करती है। जिससे फसल प्रणाली के भीतर विविधीकरण और बिना जुताई के मृदा प्रबंधन का संयोजन एसओसी को बेहतर बनाने में मदद कर सकता है। पौधों की विविधता में वृद्धि अवशेष अपघटन और मृदा एसओएम स्थिरीकरण पर सकारात्मक प्रभाव डालकर मृदा की प्रतिक्रिया को बढ़ा सकती है और घुमावदार फसलों के साथ मृदा में कार्बन के संचय में योगदान कर सकती है। लंबी अवधि (24 साल से अधिक) के लिए विविध 4—वर्षीय फसल चक्रों का उपयोग, 2 वर्ष के मक्का—सोयाबीन चक्र की तुलना में एसओसी, समग्र कार्बन और नाइट्रोजन अंशों और मृदा एकत्रीकरण को बढ़ाता है।

सतत् भूमि प्रबंधन के तरीके

प्रबंधन के तरीके जो एसओसी को बढ़ा सकते हैं और वातावरण में कार्बन हानि को कम कर सकते हैं. नीचे वर्णित हैं:

- संरक्षण जुताई प्रथाएं मृदा की भौतिक स्थिरता को बरकरार रखते हुए। एसओसी के भंडारण में बिना जुताई प्रबंधन सहायता सहित संरक्षण जुताई जब कम जुताई प्रणाली को अवशेष प्रबंधन और खाद प्रबंधन के साथ जोड़ा जाता है, तो समय के साथ एसओसी बढ़ सकता है।

- **फसल अवशेष प्रबंधनः** फसल अवशेषों को मृदा में लौटाने से कार्बन बढ़ता है और एसओसी बनाए रखने में मदद मिलती है।
- **कवर फसलें:** कवर फसलें जड़ और जमीन के ऊपर जैवभार दोनों को जोड़कर मृदा के कार्बन पूल को बढ़ा सकती हैं। कवर मृदा के कटाव और मृदा के कणों के साथ कार्बन के परिणामी नुकसान के जोखिम को भी कम करते हैं। कवर फसलें पोषक चक्रण को भी बढ़ाती हैं और समय के साथ मृदा के स्वास्थ्य को बढ़ाती हैं।
- **खाद और कम्पोस्टः** जैविक संशोधन जैसे खाद या कम्पोस्ट को डालने से मृदा कार्बन सीधे बढ़ सकता है और इसके परिणामस्वरूप मृदा की समग्र स्थिरता भी बढ़ सकती है। यह मृदा की जैविक बफरिंग क्षमता को बढ़ाता है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक उपज और उपज स्थिरता समय के साथ बढती जाती है।
- **फसल का चयनः** बारहमासी फसलें वार्षिक रोपण की आवश्यकता को समाप्त करती हैं और कटाई के बाद जड़ और कूड़े के अपघटन द्वारा एसओसी को बढ़ाती हैं। सामान्य रूप से अधिक जड़ द्रव्यमान वाली फसलें जड़ अपघटन और शारीरिक रूप से बंध समुच्चय को एक साथ जोड़ती हैं। उच्च अवशेष वार्षिक फसलों का उपयोग फसल प्रणालियों से शुद्ध कार्बन हानि को कम करने में भी मदद कर सकता है।

सतत् खाद्य उत्पादन के लिए मृदा कार्बनिक कार्बन का प्रबंधन

व्यापक रूप से यह पाया गया है कि जलवायु परिवर्तन अल्पीकरण और अनुकूलन उपाय के रूप में मृदा का कार्बनिक कार्बन अधिग्रहण का बहुत महत्व हो सकता है। हालांकि, यह अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है कि मृदा का कार्बनिक कार्बन (परोक्ष रूप में मृदा के जैविक पदार्थ के लिए) खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे मृदा की उत्पादकता में बढ़ोतरी और फसल की लगातार उच्च पैदावार अर्जित की जा सकती है, विशेष रूप से इसके उचित प्रबर्धन द्वारा जल और पोषक तत्व धारण क्षमता में वृद्धि करके और मृदा की संरचना एवं बनावट में सुधार करके, पौधों की वृद्धि/विकास में उन्नत सुधार किया जाता हैं।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर गहरा प्रभाव पड़ने की संभावना है, इस प्रकार यह खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा बन गया हैं। आईपीसीसी के अनुमान के मुताबिक 21वीं सदी के अंत तक वातावरण में 4° सेल्सियस तापमान की वृद्धि वैश्विक खाद्य मांगों में बढ़ोतरी को देखते हुए खाद्य सुरक्षा गारंटी के लिए विनाशकारी नतीजों का कारण माना गया है। वास्तव में, जलवायु परिवर्तन उन प्रमुख चुनौतियों में से एक है जिनसे विश्व की कृषि क्षेत्र में भविश्य में आने वाली वैश्विक खाद्य आपूर्तियों को पूरा करने के लिए सामना करना पड़ेगा। खाद्य सुरक्षा जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में चार अलग–अलग पहलुओं से प्रभावित होती हैं।

- भोजन की उपलब्धता,
- भोजन की पहुँच,
- खाद्य आपूर्ति की स्थिरता तथा
- भोजन (खाद्य सुरक्षा और पोषण) का पर्याप्त रूप से उपयोग करने के लिए उपभोक्ताओं की क्षमता।

जलवायु परिवर्तन, जैसा कि बढ़ते तापमान, वर्षा के बदलते स्वरूप, अधिक तीव्र गति से और चरमसीमा में मौसम की बदलती हुयी प्रवृतियों से, फसल और पशुधन का प्रचण्ड रूप से उत्पादन का काफी प्रभावित होना आदि इसके प्रभाव को प्रमाणित करता है। इसके अलावा, जल स्रोतों के तापमान में वृद्धि, पीएच के मान में कमी और वर्तमान में समुद्रीय परितंत्र के स्वरूप की उत्पादकता में परिवर्तन से मत्स्य उत्पादन को सबसे अधिक प्रभावित करती हैं। इसके परिणामस्वरूप, उपज में कमी, जैवीय स्थानान्तरण, कृषि जैव विविधता और पारिस्थितिक सेवाओं में गिरावट, कृषि की आय में हानि, और खाद्य की कीमतों और व्यापारिक लागतों में वृद्धि सहित बड़ी कमियां अपेक्षित हैं। इसलिए, वैश्विक खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाले जोखिमों को कम करने वाले उपायों पर बेहतर तरीके से

ध्यान देने की अति आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन अल्पीकरण और अनुकूलन के लिए जितना महत्वपूर्ण है, मृदा का कार्बनिक कार्बन पर निरंतर कार्य एक सतत वैश्विक खाद्य आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए अति महत्त्वपूर्ण उपाय है।

मृदा का कार्बनिक कार्बन, मृदा के प्रमुख गुणधर्मों में से एक है, जो मृदा के कई महत्वपूर्ण कार्यों से जुडा है। यह पोषक तत्वों का स्रोत है और कृषि उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। मृदा के कार्बनिक कार्बन स्टॉक में वृद्धि से उच्च–आदान वाणिज्यिक कृषि में विशेष रूप से कम आदान अवक्रमित भूमि में फसल की पैदावार बढ़ जाती है,। उप–सहारा अफ्रीका जैसे क्षेत्रों में, जहाँ पर किसानों का निर्वाह उर्वरक उपलब्धता और उचित सिंचाई की कमियों को निरंतर अनुभव करते हैं, मृदा का कार्बनिक कार्बन ही उत्पादन की बढ़ोतरी का उपाय है। कई अध्ययनों ने खाद्य उत्पादन के संदर्भ में मृदा के कार्बनिक कार्बन के योगदान का आंकलन किया है। यह पाया गया है कि कृषि कार्यप्रणाली में मृदा के कार्बनिक कार्बन को संरक्षित करने से खाद्य उत्पादन में 17. 6 मिलियन टन प्रति वर्ष की वृद्धि हो सकती है। ऐसा भी उल्लेखित किया गया है कि निम्नीकृत फसल भूमि के मृदा का कार्बनिक कार्बन पूल में 1 टन की वृद्धि होने से गेहूँ की पैदावार में 20 से 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर, मक्का में 10 से 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर और लोबिया में 0.5 से 1 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की वृद्धि हो सकती है। इसलिए, स्थायी मृदा प्रबंधन जो मृदा के कार्बनिक कार्बन स्टॉक को बढ़ाता है, उसे स्थानीय और वैश्विक आधार पर विकसित किया जाना चाहिए और अधिक टिकाऊ खाद्य प्रणालियों के लिए अपनाया जान्न चाहिए।

निष्कर्ष

वर्ष 2030 तक खराब हो चुकी भूमि और मृदा को बहाल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा अनिवार्य सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी 15.3) को प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिकों, कृषक समुदायों और उनके संस्थानों के बीच तालमेल की आवश्यकता है जो भूमि उपयोगकर्ता एवं प्रबंधक हैं। अनुसंधान विश्व स्तर पर बहाली की पहल में मदद कर सकता है, लेकिन केवल तभी जब किसान, उनकी आजीविका और समुदाय इस तरह की पहल के केंद्र में हों।

मृदा की गुणवत्ता में सुधार, फसल की पैदावार बढ़ाने और मृदा के नुकसान को कम करने के लिए मृदा कार्बन प्रबंधन एक महत्वपूर्ण रणनीति है। मृदा में कार्बन संचय करने से मृदा के स्वास्थ्य और उत्पादकता में सुधार होता है, और वैश्विक कार्बन चक्र को स्थिरता प्रदान करने में मदद मिलती है, जिससे कृषि के उत्पादन में लाभ होता है। अपनी बहुक्रियाशील भूमिकाओं और भूमि प्रबंधन के प्रति संवेदनशीलता के कारण, मृदा का कार्बनिक कार्बन भूमि क्षरण तटस्थता के तीन वैश्विक संकेतकों में से एक है। इसलिए, भूमि क्षरण तटस्थता लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मृदा के कार्बनिक कार्बन में परिवर्तन की भविष्यवाणी और निगरानी करना अति–महत्वपूर्ण है।

★ ★ ★

क्षरित चराई भूमि पुनर्वास में शुष्क देशज झाड़ियों की सुरक्षात्मक एवं उत्पादक भूमिका

वी.एस. राठौड[1] **एवं जे.पी. सिंह**[1]
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

पश्चिमी राजस्थान में स्थानीय झाड़ियाँ शुष्क पारिस्थितिकी तन्त्र की प्राकृतिक वनस्पतियों का अभिन्न अंग है। सूखे और अकाल के समय इन झाड़ियों का महत्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि कम वर्षा व सूखे का दूसरी वनस्पतियों की अपेक्षा इन पर कम प्रभाव पड़ता है। अतः विकट परिस्थितियों में ये वनस्पतियाँ पशुओं विशेषकर भेड़, बकरी व ऊँटों के लिए चारे का मुख्य स्त्रोत होती हैं। इन झाड़ियों में पोषक तत्वों व खनिज पदार्थों की मात्रा औसत तुल्यता से अधिक पायी जाती हैं जो कि पशुओं के लिए पर्याप्त है। अतः जब घासें सूख जाती हैं, तो पशुओं में प्रोटीन की कमी को पल्लव चारे से पूरा किया जा सकता है। साथ ही यहाँ कम व अनियमित वर्षा होने के कारण समय–समय पर सूखे/अकाल की समस्या बनी रहती है। इस स्थिति में यदि खेतों में बहुवर्षीय वांछित झाड़ियाँ हो तो सूखे के समय फसल उत्पादन नगण्य रहने पर ये झाड़ियाँ चारा व जलाऊ ईंधन की आपूर्ति का एक मात्र साधन हो सकती है। इन झाड़ियों में स्थानीय जलवायु के अनुरूप अनियमित वर्षा, सूखा, अधिक चराई दबाव आदि वहन करने की अद्‌भुत क्षमता है। इसके अलावा ये झाड़ियाँ मृदा एवं पर्यावरण संरक्षण में नितान्त आवश्यक है।

यहाँ प्रमुख रूप से *केलीगोनम पोलीगोनाइडिस* (फोग), *जीजीफस नुमुलेरिया* (बोरडी), *अकेसिया जेकमनसाई* (बावली), *हेलोजीलान सेंलीकार्निकम* (लाना), *लेप्टाडीनया पाइरोटेकनिका* (खींप), *केपेरिस डेसीडुआ* (कैर), *क्लीरोडेन्डरोन फ्लोमाइडिस* (इन्नी), *केलोट्रोपिस प्रोसीरा* (आक), *लाइसम वारबेरम* (मुराल), *कोमिफोरा विटाई* (गुग्गल), *यूफोरबिया केडिसिफोलिया* (थोर), *मेइटेनस इमर्जिनाटा* (कंकेड़ा), *माइमोसा हमाटा* (जींजनी), *बेलेनाइटस इजिप्टिका* (हिगोंट), *ग्रीवया टेनेक्स* (गंगेरन), *क्रोटोलेरिया ब्रुहिया* (सीनिया) आदि झाड़ियाँ मिलती है। इसके साथ ही लवणीय मृदाओं में लवणमृदोद्‌भिद झाड़ियाँ जैसे *हेलोजीलान रिकर्वम* (खारा लाना), *सालसोला वेरयोसमा* (गोरालाना/लानी), *सुएडा फ्रुटीकोसा* (लूनी) आदि पायी जाती हैं। इन सभी प्रजातियों का अपना अलग–अलग प्राकृतिक परिवेश है। ये प्रजातियाँ अनुकूलनशीलता की व्यापक रेंज दर्शाती हैं। कुछ रेतीले टीबों पर मिलती है तो दूसरी ककंरीली, पथरीली व लवणीय भूमि में अच्छी वृद्धि करती हैं ।

क्षरित रेंजभूमियों के लिए झाड़ियाँ महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि अधिकांश झाड़ियाँ विशेष रूप से पोषक तत्वों की सीमाओं के प्रति अनुकूलित हैं। जैसे कि *केलिगोनम पॉलीगोनोइडिस* (फोग) प्रजाति खनिज पोषक तत्वों की दृष्टि से रेतीले टीबों के सबसे अनुपजाऊ आवासीय परिवेश में भी जीवित रहती हैं।

सुरक्षात्मक भूमिका

शुष्क क्षेत्र में देशीय झाड़ियाँ महत्वपूर्ण रक्षात्मक भूमिका निभाती हैं। विशेषकर बारानी क्षेत्रों में यह देखा गया है कि *जीजीफस नुमुलेरिया* (बोरड़ी/झड़बेरी) झाड़ी के नीचे उगने वाली घास पौष्टिक होती हैं, जिसे पशु चाव से खाते है। इन झाड़ियों को वितान (कैनोपी) फैलावदार होती है जो कि सूक्ष्म जलवायु में एक बदलाव लाती है साथ ही ये झाड़ियाँ बहुवर्षीय घासों जैसे सेवण, धामण, मोडाधामण आदि के लिए अच्छा परिवेश बनाती है, जिससे घासों को

[1]प्रधान वैज्ञानिक

पनपने का अच्छा अवसर मिलता है। इसी प्रकार *जीजीफस नुमुलेरिया* प्रजाति की झाड़ी काटों की उपस्थिति के कारण घासों को सुरक्षा प्रदान करती हैं, जिससे चरागाह में घास की अच्छी प्रजातियाँ अपना अस्तित्व बनाये रखती हैं। बोरड़ी की झाड़ियाँ वायु अपरदन को रोकती है और अपने चारों और के क्षेत्र में मृदा के जमाव में सहायक होती है।

पश्चिमी राजस्थान में रेतीले टिबों के स्थिरीकरण हेतु फोग एवं बावली दोनों ही महत्वपूर्ण झाड़ी प्रजातियाँ हैं। *केलिगोनम पोलीगोनाइडिस* मरूस्थल की एक अति महत्वपूर्ण प्रजाति है, जो कि रेतीले टीबों के स्थिरीकरण हेतु एक श्रेष्ठतम प्रजाति है। इसमें विविध परिस्थितियों में अनुकूलन के लिए आश्चर्यजनक दक्षता देखने को मिलती है। जब यह रेतीले टीबों पर उगती है तो शिखर को पसंद करती है जो कि अंतः भूस्तारी (सकर्स) के कारण कम समय में ही पूर्ण रूप से एकाधिकार कर लेती है। सूर्य की गर्मी को सहन करने के लिए इसकी छाल मोटी तथा कार्की होती है, जो कि एक रोधक का कार्य करती है। फोग की जड़ें प्रायः 5 से 7 मी. गहराई तक जाती है और इनमें 7 से 10 मी. तक फैलाव होता है। इसका विस्तृत जड़ तंत्र मृदा को बांधे रखने में सहायक होता है, जो कि मृदा संरक्षण में मदद करता है। फोग के रोपण से न केवल पारिस्थितिकी तंत्र में सुधार होता है, अपितु कार्बनिक कार्बन बढ़ने के साथ मृदा की उर्वरता में भी सुधार होता है। खुले स्थान और पौधे की कैनोपी के नीचे से एकत्र किए गए मृदा के नमूनों में कार्बनिक कार्बन की मात्रा में सार्थक अंतर पाया गया। यह खुले स्थान में 1.4 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. से बढ़कर फोग झाड़ी की कैनोपी के नीचे 2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. हो गया। अतः इसी कारण *केलिगोनम पोलीगोनोइडिस* का रोपण असमतल टीलों पर करके रेगिस्तान के प्रसार को रोका जा सकता है। बावली झाड़ी भी रेतीले टीबों के मध्य रेतीले भाग में, जहाँ वनस्पतियों का अभाव रहता है, अच्छी वृद्धि करती है। इसकी बहुशाखीय प्रकृति व घना जड़तंत्र मृदा को जकड़े रखता है, जिसके परिणामस्वरूप यह टीबों के प्रसार को रोकती है एवं मृदा संरक्षण में अहम भूमिका निभाती है। इसी प्रकार रेतीले क्षेत्रों में *हेलोक्जिलोन सेलिकार्निकम* (लाणा) झाड़ी भी अपने बहुशाखीय व अधिक फैलाव के कारण मृदा का अपरदन होने से रोकती है व तेज हवा के दौरान अपरदित मृदा का संरक्षण भी करती है। *क्लीरोडेंड्रम फलोमाइडिस* (अरणी या इन्नी) एक बहुशाखीय 1.0 से 3.0 मी. ऊँची बिना कांटे वाली झाड़ी है, जो कि बीकानेर, चुरू व सीकर जिले के रेतीले टीबों व रेतीली बंजर भूमि में बहुतायत से देखी जा सकती है। किसान प्रायः खेत के चारों ओर जैविक बाड़ के रूप में इसका उपयोग करते हैं। इसकी जैविक बाड़ बहुत घनी होती है और इसकी ऊँचाई भी काफी हो जाती है, जो कि रेतीले क्षेत्रों में मृदा अपरदन को रोकती है।

शुष्क चट्टानी और पेडिमेंट क्षेत्रों के परिवेशों में *कोमीफेरा वीटाई* (गुग्गल) एक विशेष क्षेत्रीय प्रजाति है। मृदा गुणवत्ता के संबध में गुग्गल माँग कम है क्योंकि यह अत्यधिक चूनेदार/कैल्सियमी तथा पतली पथरीली मृदाओं वाले प्राकृतिक स्थलों पर ही है। शुष्क क्षेत्र की काष्ठीय प्रजातियों में से गुग्गल को सबसे कम जल की आवश्यकता होती है। *ग्रेविआ टेनाक्स* (गंगेरन) भी इस परिवेश की एक महत्वपूर्ण झाड़ी है, जो कि अत्यधिक तापमान एवं शुष्क जलवायु को सहन करने में सक्षम है। हालांकि इसकी वृद्धि शुष्क जलवायु में धीमी गति से होती है, लेकिन यह इस क्षेत्र में अत्यधिक प्रतिकूल स्थानों पर भी पनपती है। इसका प्रभावकारी जड़ तंत्र पत्थरों की चट्टानों की सूक्ष्म दरारों में अन्दर प्रवेश कर जाता है। इस तरह यह झाड़ी रेतीली मृदाओं से लेकर चट्टानों तक कहीं भी अपने आपको सुस्थापित कर सकती है, जो कि वायु व जल क्षरण को रोकता है। यह प्रजाति अपेक्षाकृत पारिस्थितिकी रूप से पर्यावरणीय तनाव को सुगमता से सहन कर सकती है एवं पारिस्थितिकी संतुलन को बनाने में सहायक है। अतः शुष्क क्षरित भूमि के पुर्नवसन में *ग्रेविआ टेनाक्स* प्रजाति की प्रमुख भूमिका होती है। पत्तियों के पतझड़ (लिटर) से मृदा की भौतिक व रासायनिक गुणधर्मों में सुधार होता है।

कंकरीले व रेतीले मैदानी भागों में *कैपरिस डैसिडुआ* (कैर) झाड़ी मरूस्थलीय वनस्पति की प्राकृतिक छटा का महत्वपूर्ण अंग है। यह भी कम जल में आसानी से उगने वाली झाड़ी है। यह माना जाता है कि कैर की झाड़ियों के नीचे फसलों की पैदावार अच्छी होती है। जिसका मुख्य कारण कैर द्वारा मृदा क्षरण रोकना व इसके नीचे की मृदाओं में जैविक कार्बन का बढ़ना माना गया है।

स्थानीय देशज झाड़ियों का वायु अवरोधक, रक्षक पट्टियों (शेल्टर बैल्ट) तथा जीवंत या हरित बाढ़ के रूप में भी महत्ता है। फोग, बावली, अरनी, झाउ, जिंजवा, मुराल, थोर, हथाथोर, केकेरा, आक, गंगेरन आदि प्रजातियों को परम्परागत रूप से बाढ़ के रूप में लगाते हैं। इसके साथ ही रेंजभूमि में पशुओं को छाया प्रदान करने में कैर झाड़ी का विशेष महत्व है।

उत्पादक भूमिका

पल्लव चारा: स्थानीय झाड़ियों में *जीजीफस नुमुलेरिया* (बोरड़ी/झड़बेरी) प्रजाति का पशुपालन में अपना विशिष्ट स्थान रहा है, तथा यह परम्परागत कृषि वानिकी पद्धति का अभिन्न अंग रही है। इससे प्राप्त पत्ती चारा, जिसे पाला कहते है की पोषकता एवं गुणवत्ता से पशुपालक सदियों से परिचित रहे हैं। यह प्रजाति इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसका पाला (पत्ती चारा) घास के सूख जाने पर भी बहुलता से उपलब्ध होता है। रेतीली रेंजभूमियों में फोग का लासू चारे का महत्वपूर्ण संसाधन है। फोग का एक पूर्ण विकसित पौधा लगभग 2 कि.ग्रा. लासू प्रदान कर सकता है। फोग के पके फल, जिसे घिंटाल कहते हैं, को भी पशु चाव से खाते हैं और एक अच्छी तरह से विकसित झाड़ी से 1.5 से 3.0 कि.ग्रा. तक घिंटाल मिल जाता है। इसके अलावा, फोग मई, जून और जुलाई के गर्मियों के महीनों में भी ऊँटों को हरा रसीला चारा प्रदान करने में सक्षम है। बीकानेर जिले में सूखे की स्थिति में क्षेत्र अध्ययन के दौरान फोग बाहुल्य क्षेत्र के किसानों ने 3 से 4 क्विंटल सूखा लासू प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया। इसी तरह लाना झाड़ी की फूली, जिसमें कि प्रचुर मात्रा में प्रोटीन होता है, का चारे के रूप में उपयोग हेतु करते हैं। पल्लव चराई में *एकेसिआ जैक्कुएमोटिई* (बावली) झाड़ी बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी यह विशेषता है कि जब वर्षाकाल में प्रचुर मात्रा में जल की उपलब्धता होती है तब यह सूखी पत्तियों वाली झाड़ी लगती है, लेकिन गर्मियों में जब जल की कमी होती है तो मुलायम पत्तियों से हरी भरी रहती है। *क्रोटोलेरिया ब्रुहया* (सीनिया) को ऊँट, भेड़ व बकरी सामान्य दशा व चारा के अभाव के समय खाते हैं।

भोजन: पश्चिमी राजस्थान में खाद्य फलों में *जीजीफस नुमुलेरिया* (बोरड़ी/झड़बेरी) झाड़ी का विशेष स्थान है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में इसके पके फल एकत्रित किये जाते हैं एवं स्वयं के उपयोग के साथ ही स्थानीय बाजारों में भी इनकी काफी माँग होती है। फोग की पुष्प कलिकाएँ, जिन्हें फोगला कहा जाता है, का उपयोग स्थानीय निवासियों द्वारा विशेष रूप से गर्मियों के महीनों के दौरान एक महत्वपूर्ण आहार के रूप में किया जाता है। खींप की मुलायम तरूण फलियाँ, जिसे खिपोली कहते हैं, की स्वादिष्ट सब्जी बनाई जाती है। लाना के बीजों का उपयोग भी बाजरा के साथ चपाती बनाने में करते हैं। तालछापर अभयारण्य में *सुएडा फ्रुटीकोसा* (लूणी) प्रजाति बहुतायत से पायी जाती है जिसकी सब्जी भी बनाते हैं।

औषधीय: शुष्क क्षेत्र की औषधीय झाड़ियों में *कोमीफेरा वीटाई* (गुग्गल) का विशेष स्थान है, जिसके रेजिन की काफी मांग है। इसके साथ ही *क्लारोडेंड्रम फलोमाइडिस* (अरनी), *लाइसम बारबेरम* (मुराल), खींप, आक, गंगेरन, गोंदी, जींजवा, सीनया, लाना, लानी, लूनी आदि झाड़ियों का भी औषधीय महत्व है।

गोंद: गोंद उत्पादन में बावली झाड़ी का अपना महत्व है। बावली बहुल क्षेत्रों में जैसे कि बीकानेर जिले में जालवाली, लाखूसर आदि क्षेत्रों में ग्रामवासी आज भी बावली की झाड़ियों से गोंद एकत्र करते हैं, जो कि स्वयं के उपयोग लिए तथा स्थानीय बाजार में माँग होने के कारण अतिरिक्त आय का साधन है।

रेशा: पश्चिमी राजस्थान में परम्परागत रूप से रेशे के लिए *लेन्टाडिन्या पाइरोटेक्निका* (खींप) का बहुत अधिक उपयोग होता रहा है। इससे जो रस्सियाँ बनाते हैं, प्रायः उनका उपयोग बैलगाड़ियों, चारपाइयों, इंधन लकडियों को बांधने या घासों के गठ्ठरों को बांधने में करते हैं। इसके साथ ही आक, सीनिया आदि का भी उपयोग करते हैं। बावली व *ग्रेविया टेनाक्स* (गंगेरन) से टोकरियाँ भी बनायी जाती है।

जलाऊ ईंधनः थार मरूस्थल में ईंधन हेतु *केलिगोनम पोलोगोनाइडिस* (फोग) का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अधिभौम भाग की उतनी महत्ता नहीं है, जितना की भूमिगत काष्ठ का वाणिज्यिक मूल्य है। इसकी काष्ठ में तत्क्षण जलने की एक अद्‌भुत क्षमता है। यह केवल शीघ्र ही नही जलती वरन् यह एक प्रचंड ताप प्रदान करती है। इसी वजह से जो स्थानीय सुनार व लुहार है उनके लिए यह एक उत्कृष्ट संसाधन है। जिप्सम कारखानों व ईंट के भट्‌टों में भी इसकी लकड़ी को उपयोग में लेते हैं। इसी प्रकार *एकेसिआ जैक्कुएमोटिई* (बावली) झाड़ी की काष्ठ को भी स्थानीय लोहार व गडरिया जलाऊ लकड़ी हेतु लोहे के उपकरण बनाने में प्रयुक्त करते हैं। *हेलोक्सिलोन सेलिकार्निकम* (लाणा) की लकड़ियाँ ईंधन के रूप में भी प्रयुक्त होती है।

औद्योगिक उत्पाद-साजीः *हेलोक्सिलोन रिर्कवम* (खारा लाणा), जो कि मुख्यतः पश्चिमी राजस्थान की क्षारीय/लवणीय भूमि में पायी जाती है, का प्राचीन समय से साजी बनाने में उपयोग होता आया है। इसकी गुणवत्ता के कारण पापड़ उद्योग में अत्यधिक माँग है।

सारांश

मरूस्थल में विपरीत परिस्थितियों में उत्पादन की अद्‌भुत क्षमता तथा पोषण से भरपूर गुणवत्ता जैसी विशेषताओं के कारण स्थानीय झाड़ियाँ बारानी क्षेत्रों में एक वरदान साबित हो सकती है। अतः पश्चिमी राजस्थान की भौगोलिक स्थिति व जलवायु में परती/बंजर/लवणीय भूमि तथा प्राकृतिक चरागाहों के सुधार एवं विकास के लिए स्थानीय झाड़ियों का बहुत महत्व है। इन प्रजातियों में स्थानीय जलवायु के अनुरूप अनियमित वर्षा, सूखा, अधिक चराई दबाव आदि वहन करने की अद्‌भुत क्षमता है। उदाहरणार्थ *जीजीफस नुमुलेरिया* (बोरड़ी/झड़बेरी) के पोषक चारे के साथ ही इससे खाद्य फल, जलाऊ ईंधन आदि की आपूर्ति भी होती है। इन सभी उपयोगों के साथ पत्ती चारा प्राप्त करने के बाद इसकी कंटीली शाखाओं का उपयोग घरों व खेतों की बाड़ में किया जाना भी सर्वविदित है। इसके अलावा ये प्रजातियाँ मृदा एवं पर्यावरण संरक्षण में भी नितान्त आवश्यक है। सूखा एवं अकाल की विकट परिस्थितियों में इन झाड़ियों की उपयोगिता जीवन बीमा के समान है।

★ ★ ★

शुष्क क्षेत्र में मरुस्थलीकरण रोकने हेतु वैकल्पिक भू–उपयोग पद्धतियों का महत्व

मावजी पाटीदार[1], अनिल पाटीदार[2], सुगनचन्द मीणा[3], सारन्या रंगनाथन[1] एवं दिलीप कुमार[3]
केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान केन्द्र, जैसलमेर

मरूस्थलीकरण भू–अवक्षय की एक प्रक्रिया है, जो कई कारणों से विश्व के अनेक देशों में फैली हुई है। यह अनेक कारणों से हो सकती है, जिसमें जलवायु संबंधित कारणों जैसे भयंकर सूखे से पेड़ पौधों का विनाश होना, तेज हवा से टीब्बे का सचल होना, अति बारिश/वृष्टि से भूमि का कटाव इत्यादि तथा मानव द्वारा भूमि पर अत्यन्त दबाव बढ़ाना और असमान्य रूप से भूमि का दोहन करना शामिल है। जलवायु का वर्तमान परिवर्तन मानव–निर्मित माना जाता है, यह भी मरूस्थलीकरण का एक कारण हो सकता है। पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थलीकरण प्राकृतिक कारणों से ज्यादा मरूस्थल में भूमि व जल संसाधनों का अनियंत्रित उपयोग, जिसमें कृषि पद्धति व कृषि विस्तार भी शामिल है। पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थलीकरण का मुख्य कारण रेतीली मिट्टी व टिब्बे का सचल होना, वर्षा से भूमि का कटाव होना, लवणीय व क्षारीय मिट्टी का होना और चरागाह उत्पादकता का कम होना पाया गया है।

भारत का शुष्क क्षेत्र 38.7 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है। उसमें से 31.7 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र गर्म शुष्क व 7 मिलियन हेक्टेयर ठण्डा शुष्क क्षेत्र में आता है। गर्म शुष्क क्षेत्र मुख्य रूप से उत्तर–पश्चिम भारत के राजस्थान (81.9%), उत्तर–पश्चिम गुजरात (19.6%), पंजाब व हरियाणा (8.6%), कर्नाटक (2.7%), महाराष्ट्र (0.4%) व आंध्रप्रदेश (6.8%) राज्यों में फैला हुआ है। राजस्थान में कुल भू–भाग का लगभग 19.67 मिलियन हेक्टेयर शुष्क क्षेत्र है, जो कि पश्चिमी राजस्थान के 12 जिलों में फैला हुआ है। जिसमें लगभग 10 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर खेती की जाती है व ज्यादातर वर्षा–आधारित खेती है। सींचित क्षेत्र का हिस्सा लगभग 10 से 15 प्रतिशत है। इस भू–भाग में वनों का क्षेत्रफल भी 2% से कम है, जबकि पर्यावरण का सही संतुलन बनाए रखने के लिए यह 33% होना चाहिए। लगभग 40% भूमि पड़त, बंजर एवं कृषि अनुपयोगी है।

इस क्षेत्र में वार्षिक वर्षा 100 से 500 मि.मी. के बीच होती है, जो कि बहुत कम है। इसके साथ यहाँ उच्च तापमान, तेज वायु गति, अधिक वाष्पीकरण, खारापन इत्यादि इस क्षेत्र की प्रमुख समस्याएँ हैं। इसके अलावा, अक्सर सूखा, मिट्टी का हवा के द्वारा कटाव, मिट्टी में उर्वरता की कमी, रेत के टीलों का स्थानान्तरण आम बात है। इन सब समस्याओं की वजह से फसल उत्पादन इस क्षेत्र में कम, अस्थिर व जोखिम भरा है। मरूस्थलीकरण का सबसे अधिक प्रभाव कृषि के ऊपर पड़ता है, जब अनाज की पैदावार घटने लगती है और उसके कारण समूचा कृषि–आधारित समाज व क्षेत्र धीरे–धीरे एक आर्थिक संकट की तरफ बढ़ने लगता है, क्योंकि हमारा देश अभी भी कृषि आधारित है और हमारे देश का 69% हिस्सा (22.8 करोड़ हेक्टेयर) शुष्क, अर्ध–शुष्क और उपआर्द्र जलवायु से प्रभावित है, जहाँ मनुष्य भार और पशुभार द्वारा कृषि और चरागाह भूमि के ऊपर दबाव बहुत ही ज्यादा है। इस दबाव के कारण और वर्तमान में लगातार ज्यादा फसल उगाने का लक्ष्य और उससे ज्यादा मुनाफा करने के प्रयास में जमीन का दोहन भी बहुत ज्यादा होने लगा है। अतः इस मरूस्थलीकरण को रोकने के लिये हमें कृषि में वैकल्पिक भू–उपयोग पद्धतियों को अपनाना चाहिये, जिससे मरूस्थलीकरण के प्रसार को कम किया जा सके तथा कम उपजाऊ भूमि से अधिक उत्पादन लिया जा सके।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक, [3]वरिष्ठ वैज्ञानिक

मरूस्थल

मरूस्थलीकरण से बाधित सड़क मार्ग

वैकल्पिक भूमि उपयोग पद्धति द्वारा विविधीकरण

उपयोग क्षमता के आधार पर विभिन्न भूमि वर्गों के लिए भिन्न–भिन्न पद्धतियाँ विकसित की गई हैं, जिसमें कृषि फसलें, फलदार पेड़, इमारती लकड़ी वाले पेड़, झाड़ियाँ तथा घासें शामिल हैं। वैकल्पिक भूमि उपयोग पद्धति में कृषि–वानिकी बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें पेड़ों के साथ–साथ विभिन्न ऋतुओं की फसलें उगाई जाती हैं। असींचित क्षेत्रों में घास, झाड़ियाँ और वृक्ष–आधारित पद्धतियाँ जैसे ले पद्धति और वीथिका खेती पद्धति से फसल उत्पादकता को टिकाऊ बनाने, भूमि और जल संसाधनों को संरक्षित करने और पशुपालन उद्यम को सुदृढ़ करने में सहायता मिलती है। विभिन्न वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियों का विस्तृत विवरण निम्नानुसार दिया गया है।

वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियाँ

कृषि-वानिकी प्रणाली: कृषि–वानिकी के अंतर्गत बहुउद्देशीय वृक्षों को फसलों के साथ मिलाकर उगाया जाता है। पेड़ों की आमतौर पर सालाना काँट–छाँट की जाती है जिससे चारे के साथ–साथ ईंधन की लकड़ी भी मिलती है। वार्षिक कटाई–छँटाई के अलावा कुछ पेड़ों को भी काट दिया जाता है, ताकि प्रकाश मिल सके और फसल के साथ प्रतिस्पर्धा को कम किया जा सके, जो चारा और ईंधन की लकड़ी भी प्रदान करती है। इस प्रणाली से भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है एवं वर्षाजल का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। पेड़ों की पत्तियों के गिरने से भूमि के कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में बढ़ोतरी होती है और भूमि में जल धारण क्षमता बढ़ जाती है। इस पद्धति में शुष्क क्षेत्र में मुख्य रूप से खेजड़ी, रोहिड़ा के साथ बाजरा, मूंग, मोठ, ग्वार, तिल आदि फसलों को उगाया जाता है।

कृषि वानिकी पद्धति में बहुउद्देशीय वृक्षों के साथ फसलें

वन–चरागाह पद्धतिः हमारे देश में वनों का पुराने समय से पशुओं की चराई के लिए उपयोग किया जाता रहा है। इसी सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए चारा फसलों को पेड़ों के साथ उगाने की प्रक्रिया को वन–चरागाह पद्धति का नाम दिया गया है। यह भूमि प्रबन्धन की वह पद्धति है, जिसमें पेड़ों की पंक्तियों के बीच की रिक्त जमीन में घास या चारा फसलों को उगाया जाता है, जिससे पशुओं के लिए चारा उपलब्ध हो जाता है। यह पद्धति बंजर व पथरीली तथा अनुपयोगी भूमि में ईधन एवं चारा प्राप्त करने के लिए उपयुक्त है। कृषि अयोग्य भूमि पर उन्नत तकनीकी से बहुउद्देशीय वृक्ष और झाड़ियों को उगाकर चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी और हरी खाद की आपूर्ति की जा सकती है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में वन–चरागाह पद्धति से गर्मी के दिनों में पशुओं को हरा चारा उपलब्ध करवाया जा सकता है। चारा वृक्षों से चारा पत्तियों के साथ–साथ जलावन लकड़ी भी प्राप्त होती है। वन–चरागाह पद्धति में उन्नतशील बहुवर्षीय घासों के साथ दलहनी फसलों को मिश्रित करने से चारा उत्पादन एवं घास की गुणवत्ता में वृद्धि होती है तथा कम उपजाऊ भूमि को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इस विधि से मृदा क्षरण कम होता है और भूमि में जीवांश पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है, जिससे भूमि की जल–धारण क्षमता एवं उत्पादकता बढ़ जाती है। इस प्रकार वन–चरागाह पद्धति द्वारा भूमि सुधार से कम उपयोगी भूमि को कृषि योग्य बनाकर विशाल पशुधन की भूख को मिटाने मे मदद मिल सकती है। वन चरागाहों में उगाये गये चारा वृक्षों में भूजल को गहराई से प्राप्त करने की क्षमता होती है, जिससे अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक सूखा सहन कर सकने के साथ ही पर्यावरण सरंक्षण में भी सहयोग मिलता है। वन–चरागाह पद्धति में घासों एवं फसलों के साथ–साथ छायादार पेड़ एवं झाड़ियाँ लगाते हैं, जिससे पशुओं का गर्मी में तपती धूप से बचाव होता है।

वन–चरागाह पद्धति के लिए घास, पेड़ एवं झाड़ियों का चयनः वन–चरागाह पद्धति के लिए पेड़, पौधों, झाड़ियों एवं घासों का चयन वर्षा की मात्रा और भूमि के प्रकार के अनुसार किया जाता है (सारणी 1)। पेड़ों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन वृक्षों की पत्तियाँ चारे के रूप मे उपयोगी होती हैं, उनमें तेज वृद्धि, पत्तियाँ पशुओं के खाने योग्य हों, काटने के बाद उनमें शाखा पुनः उत्पादन की क्षमता हो। सूखे को सहन करने की भी क्षमता एवं विपरीत परिस्थितियों में भी उगने की क्षमता आदि गुण भी होने आवश्यक हैं। पेड़ एवं झाड़ियाँ छायादार होने चाहिए ताकि गर्मियों में पशुओं का तेज धूप से बचाव हो सके। शुष्क क्षेत्र के लिए वन–चरागाह पद्धति में उगाये जाने वाले वृक्षों में मुख्य रूप से खेजड़ी, नीम, बबूल, कुमट, अरडू, सिरस, विलायती बबूल, अजंन, मोपेन, बेर, नूतन आदि का चयन किया जा सकता है तथा झाडियों में झरबेरी, फोग, लाना, खरसन, सीनिया आदि प्रमुख हैं। चरागाह विकास के लिए बहुवर्षीय घासें जैसे अंजन, धामण, सेवन, ग्रामना, मूरठ का चयन करना चाहिए। इसके साथ–साथ बहुवर्षीय दलहनी फसलों में मुख्य तौर से तितलीमटर (क्लाईटोरिया), सेम, वनकुल्थी, स्टाइलो, सिराट्रो आदि तथा एक वर्षीय दलहनी फसलों के रूप मे मोठ, मूंग, चवला तथा ग्वार को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

वन–चरागाह पद्धति में वृक्षों के साथ चारा फसलें

बागवानी चरागाह पद्धतिः इस पद्धति में चारा फसलों एवं घासों के साथ–साथ फल वृक्षों की खेती की जाती है। फल वृक्षों की पक्तिंयों के बीच में रिक्त स्थान पर चारा फसलें या घासें उगायी जाती हैं। प्रारम्भिक अवस्था में फल वृक्षों की वृद्धि कम होती है, उस समय चारा फसलों से चारे की प्राप्ति होती है तथा मृदा अपरदन को भी कम किया जा सकता है। शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगने वाली *जिजीफस न्यूमुलेरिया* (जरबेरी), *जिजीफस रोटिन्डीफोलिया* झाड़ियाँ और उन्नत बेर की किस्में जैसे गोला, सेब, उमरान आदि को बागवानी चरागाह प्रणाली में अंजन घास के साथ उगाया

बागवानी चरागाह पद्धति में फल वाले पेड़ों के साथ चारा फसल

जाता है। इस विधि से नियमित वार्षिक छँटाई के माध्यम से हरे चारे के साथ–साथ ईंधन की लकड़ी का उत्पादन होता है। काजरी द्वारा परीक्षण में बेर की विभिन्न उन्नत किस्मों से प्राप्त चारा बहुत अच्छी गुणवत्ता का पाया गया और छोटे जानवरों द्वारा पसंद किया गया। बागवानी चरागाह पद्धति के अध्ययनों से पता चला है कि अंजन घास एवं *जिजीफस मौरिसियाना* प्रणाली द्वारा 1 से 2 टन प्रति हेक्टेयर चारा का उत्पादन बिना फल उपज प्रभावित किये प्राप्त हुआ। इसी तरह के अध्ययन अविकानगर में अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में किए गए और बेर के साथ घास उपज भी प्राप्त हुई।

कृषि बागवानी वानिकी प्रणाली: इस प्रणाली के तहत् फल वृक्षों और फसल के साथ तेजी से बढ़ने वाले बहुउद्देशीय पेड़ उगाए जाते हैं। पेड़ आमतौर पर बारहमासी एवं वार्षिक होते हैं जो चारे के साथ–साथ ईंधन की लकड़ी भी देते हैं। वार्षिक छँटाई के अलावा कुछ पेड़ों को भी काट दिया जाता है, ताकि प्रकाश मिल सके और फसल के साथ प्रतिस्पर्धा को कम किया जा सके। ये चारे के पेड़ भीषण गर्मी और सर्दी के दौरान फल वृक्षों को कुछ सुरक्षा प्रदान करते हैं और जब ये फलों के पेड़ों में हस्तक्षेप करते हैं, तो उन्हें हटाया जा सकता है।

कृषि बागवानी वानिकी प्रणाली

सारणी: 1 मरूस्थलीकरण रोकने हेतु वार्षिक वर्षा की उपलब्धता के अनुसार निम्नलिखित पेड़/झाडियों, घासों, फलों के पेड़ और फसल का चयन

वर्षा की मात्रा	पेड़/झाड़ियाँ	घासें/दलहनी फसलें	फलों के पेड	फसल
150 से 300 मिमी	खेजड़ी, कुमट, बोरडी, जरबेर	सेवण, अंजन घास	बेर, केर, गुंदा, करोन्दा	ग्वार, बाजरा, मूंग व मोठ
300 से 500 मिमी	बबूल, खेजडी, मोपेन, नीम, अरडू, सिरस, नूतन, अंजन	सेवण, अंजन, मोडा, धामण, ग्रामना, सेम, तितलीमटर	अनार, खजूर, आंवला	ग्वार, बाजरा, मूंग, मोठ, मूंगफली, सरसों, तिल, चना
500 मिमी से ऊपर	सूबबूल, अरडू, शीशम, अंजन, सेंजना	धामण, मोडा, धामण, करड़, ग्रामना, स्टाइलो	अनार, अमरूद, नींबू	मूंग, बाजरा, ज्वार, मूंगफली, जौ, सरसों, चना

'ले' कृषि पद्धतिः इस पद्धति में अन्न वाली फसल–चक्रों में घासीय तथा दलहनी अथवा दोनों ही प्रकार की चारा फसलें ली जाती हैं जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। आई.जी.एफ.आर.आई., झाँसी में किये गये शोध परिणामों के अनुसार लगातार तीन वर्षों तक स्टायलो उगाने के बाद ज्वार के दाने (1.17 टन प्रति हेक्टेयर) व कड़बी (7.93 टन प्रति हेक्टेयर) की उपज में आशातीत वृद्धि पायी गयी। इसी प्रकार लगातार तीन वर्षों तक अंजन घास स्टायलो की खेती करने के बाद ज्वार की फसल लेने पर 1.90 टन प्रति हेक्टेयर दाना तथा 7.24 टन प्रति हेक्टेयर कड़वी की उपज प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त भूमि में नाइट्रोजन और जीवांश की मात्रा भी अन्य पूर्ववर्ती फसल की अपेक्षा सर्वाधिक थी।

घासीय तथा दलहनी फसल चक्र

छिड़काव पद्धति से खाद्यान्न फसलों मक्का, ज्वार व बाजरा में स्टाइलो बोने (ओवर सीडिंग) से दाना उत्पादन में 6 से 26 प्रतिशत की वृद्धि होती है। साथ ही स्टायलो से प्राप्त चारे का कुल चारा उत्पादन में 6 से 16 प्रतिशत का योगदान रहता है।

पट्टीदार खेती: भूमि के कटाव को रोकने व उर्वरा शक्ति को संतुलित रखने के लिए मृदा क्षरण रोकने वाली एवं मृदा क्षरण को बढ़ाने वाली फसलों को समोच्य रेखाओं पर बनी पट्टिओं में क्रमानुसार एक के बाद एक बोया जाता है। इस विधि से जल प्रवाह कम होता है व कटी हुई मिट्टी रोधी फसलों की पट्टियों से इकट्ठी हो जाती है। इस तरह इस विधि में भूमि और जल दोनों को क्षरण से बचाया जा सकता है। दलहनी फसलों और बहुवर्षीय घासों को अनाज वाली फसलों के साथ पट्टियों में उगाया जा सकता है।

सामाजिक वानिकी: सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत आबादी क्षेत्रों में खाली पड़ी भूमि, विद्यालयों, पंचायतों भवनों सहकारी संस्थाओं आदि के आस–पास वृक्षारोपण, सामूहिक आधार पर किया जाता है। इससे पर्यावरण सुधार के साथ–साथ भरपूर चारा तथा जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है। सामाजिक वानिकी का कार्यक्रम सहकारिता के आधार पर गाँव में स्वयंसेवी संस्था बनाकर करना चाहिए, ताकि पौधों की देखभाल उचित ढंग से हो सके।

पट्टीदार विधि द्वारा खेती

फसलों के साथ दलहनी चारा फसलें

मेड़ों पर घास एवं पौधारोपण: मृदा जल के संरक्षण हेतु खेतों के चारो तरफ मेड़ बनाई जाती है। परन्तु अधिक बरसात एवं तेज हवा के कारण मेड़ का कटाव हो जाता है। इसको रोकने के लिये मेड़ पर बहुवर्षीय घासों जैसे धामण, सेवण एवं ग्रामना को बोने से मृदा कटाव को रोका जा सकता है और पशुओं के लिये चारे का उत्पादन भी होता है।

इसके अलावा खेतों के आस–पास खाली पड़ी भूमि–मेड़ों आदि पर वृक्षारोपण किया जाता है जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है साथ ही भूमि के भौतिक गुणों में सुधार होता है। छोटी जोत वाले किसानों के लिये यह उपयुक्त पद्धति है।

मेड़ों पर घास एवं पौधारोपण

गलीयारा खेती (ऐले क्रापिंग): इस पद्धति में वार्षिक फसलों के साथ–साथ उपयुक्त प्रजाति के पेड़ पौधे खेत में कतारों में लगाये जाते है। इससे फसलों को वृद्धि के लिये उपयुक्त वातावरण मिलता है, वहीं साथ–साथ पेड़ों से प्राप्त उत्पादों से किसानों का आर्थिक–स्तर सुदृढ़ होता है। पेड़ों की काँट–छाँट समय–समय पर करते रहते हैं। इससे फसलों के साथ प्रतियोगिता कम होती है। खेजड़ी सुबबूल, अरडु अंजन आदि वृक्ष ऐले क्रापिंग के लिये उपयुक्त होते हैं। इस खेती के अंतर्गत फसलों के साथ दलहनी चारा फसलें उगाकर मृदा की भौतिक और रासायनिक गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है। 'एले' फसल पद्धति भी एक प्रमुख भूमि उपयोगिता का विकल्प है, जिसके द्वारा संकटयुक्त सूखाग्रस्त क्षेत्र के किसानों की बहुआयामी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। 'एले' फसलीकरण में पेड़ों की कटाई (लॉपिंग) एक समयान्तराल पर कर फसलों के साथ स्पर्धा कम की जाती है तथा पेड़ों से प्राप्त टहनियों को चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है।

मरूस्थलीकरण को रोकने के लिए कृषक क्षेत्र पर अनुसंधान कार्यक्रम

रेगिस्तान विकास कार्यक्रम (डीडीपी) एवं सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (डीपीएपी), राजस्थान में सन् 1974 में प्रारम्भ किये गये, लेकिन इन कार्यक्रमों की जब हनुमंत राव समिति द्वारा सन् 1993–94 में समीक्षा की गई तो पाया गया कि इन कार्यक्रमों को उतनी सफलता नहीं मिल पायी है जितनी कि इनसे अपेक्षा थी। इन कार्यक्रमों को अपेक्षानुरूप सफलता न मिलने के लिए लोगों की भागीदारी का अभाव एवं कार्यक्रम के बनाने व कार्यान्वित करने में संपूर्ण आधारभूत क्रियान्वित करने के तरीकों का अभाव था। इसलिए समिति ने सुझाव दिया कि इन कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए। इसी को ध्यान में रखते हुए राजस्थान सरकार ने संस्थान द्वारा विकसित तकनीकों को किसानों तक पहुँचाने के लिए सन् 1995 में पांच जिलों (जोधपुर, नागौर,

जैसलमेर, बाड़मेर व बीकानेर) के दस गाँवों के लिए संस्थान को यह कार्यक्रम दिया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्धेश्य प्राकृतिक जलग्रहण क्षेत्र के स्त्रोत भूमि, जल, वनस्पति इत्यादि के प्रयोग द्वारा गाँवों का अधिक व सामाजिक विकास करना, प्राकृतिक संसाधनों तथा सामुदायिक संपदा की उचित देखभाल करना व गरीब किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना था। संस्थान द्वारा इस कार्यक्रम के अंतर्गत शुष्क खेती, जल संग्रहण, भूमि के वैकल्पिक प्रयोग, निम्न स्तरीय व क्षीण भूमि में सुधार, जल का प्रभावी प्रयोग, पशुपालन में सुधार, परंपरागत तकनीकी ज्ञान की उपयोगिता बढ़ाना , सूर्य ऊर्जा का प्रयोग, वाणिज्यिक पौधों का मूल्याँकन, महिला सशक्तिकरण इत्यादि की उन्नत तकनीकों का प्रयोग किया गया तथा किसानों में प्रभावी रूप से लोकप्रिय बनाने के लिये प्रसार की विभिन्न विधियों जैसे प्रदर्शन, किसान मेला, क्षेत्र दिवस, पोस्टर, श्रव्य, दृश्य साधन के प्रयोग एवं दूसरे विभागों से संबंध इत्यादि का प्रयोग किया गया। क्षेत्र में प्रयोग की गई सभी तकनीकों से किसानों के सामाजिक एवं आर्थिक–स्तर में आशानुरूप सुधार पाया गया।

निष्कर्ष

मरूस्थलीकरण शुष्क भूमि में पारिस्थिकी तंत्र सेवाओं की माँग और आपूर्ति को संतुलित करने में दीर्घकालिक विफलता का परिणाम है। शुष्क भूमि पारिस्थितिकी तंत्र पर भोजन, चारा, ईंधन और मनुष्यों एवं पशुओं के लिए जल सिंचाई और स्वच्छता के लिए सेवाएँ प्रदान करने का दबाव बढ़ रहा है। इस वृद्धि के लिए मानवीय एवं जलवायु कारकों के संयोजन को जिम्मेदार माना गया है। अप्रत्यक्ष मानवीय कारक जैसे जनसंख्या दबाव सामाजिक व आर्थिक तथा प्रत्यक्ष कारक जैसे भूमि उपयोग प्रक्रम और कृषि क्रियाएँ एवं जलवायु संबंधी प्रक्रियायें हैं, जलवायु के कारकों में सूखा एवं मीठे जल की उपलब्धता में अनुमानित कमी शामिल हैं। शुष्क भूमि में गैर–शुष्क भूमि की तुलना में जल की कमी, सेवाओं के गहन उपयोग एवं जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी सेवाओं में लगातार पर्याप्त कमी का खतरा अधिक रहता हैं। विशेषकर जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप मीठे जल की कमी की अनुमानित तीव्रता शुष्क भूमि में अधिक तनाव का कारण बनेगी और अगर इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो ये तनाव मरूस्थलीकरण को और बढ़ा देंगे।

मरूस्थलीकरण की रोकथाम के लिए भूमि और जल प्रबंधन का गहन एकीकरण एक महत्वपूर्ण तरीका हैं। स्थानीय समुदाय प्रभावी भूमि एवं जल प्रबंधन नीतियों को अपनाने और उनकी सफलताओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस तरह पशुचारण एवं कृषि भूमि उपयोग का गहन एकीकरण पर्यावरणीय रूप से स्थाई तरीका प्रदान करता है। भूमि एवं जल उपयोग का विविधीकरण कर अथवा इसकी क्षमता को बढ़ाकर प्रति इकाई अधिक से अधिक चारा उपज या अन्य उत्पाद प्राप्त कर उपलब्ध संसाधनों में दबाव को कम किया जा सकता हैं। इस प्रकार भूमि के वैकल्पिक उपयोग निश्चित रूप से मरूस्थलीकरण को कम करने में उपयोगी होंगे।

★ ★ ★

पोषक तत्व खनन तथा मृदा उर्वरता का ह्रासः मृदा स्वास्थ्य कार्ड की भूमिका

एम.एल. सोनी[1], एन.डी. यादव[1], जे.पी. सिंह[1], बीरबल[1], वी.एस. राठौड़[1], पी.सी. मोहराना[1] एवं शीतल के. आर.[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर

मृदा स्वास्थ्य और उर्वरता कृषि उत्पादकता के महत्वपूर्ण घटक हैं तथा कृषकों की स्थायी आय का मुख्य आधार हैं। वैज्ञानिक सिफारिश के अनुसार उर्वरकों की इष्टतम मात्रा और फसल प्रणाली का उपयोग करना टिकाऊ खेती की दिशा में पहला कदम है। एक अनुमान के अनुसार देश की बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आवश्यकता पूर्ण करने के लिए खाद्यान्न उत्पादन के वर्तमान स्तर पर राष्ट्रीय खाद्य भण्डार में 5 मीट्रिक टन अतिरिक्त खाद्यान्न प्रति वर्ष जोड़ा जाना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु या तो कृषिगत क्षेत्र बढाया जाये या आधुनिक तकनीकों का समावेश किया जाये जिससे खाद्यान्न उत्पादन बढ सके। पिछले कुछ वर्षों के आंकड़ों पर यदि हम नजर डालें तो पायेंगे कि शहरीकरण और औद्योगीकरण में आशातीत वृद्धि हुई है, जो कृषिगत भूमि के समायोजन व भू–रूपांतरण के कारण ही संभव हुआ है। अतः यह संभावना तो बिलकुल भी नहीं है कि निकट भविष्य में खेती के अंतर्गत अतिरिक्त क्षेत्र लाया जाएगा। अतः एकमात्र विकल्प है कृषि में नवीन तकनीकों का समावेश करना, जिससे प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके।

लगभग पाँच दशक पहले शुरू हुई हरित क्रान्ति में फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों का बहुत बड़ा योगदान रहा, जिसके कारण देश के खाद्यान्न उत्पादन में वांछित वृद्धि हुई। इन किस्मों की पोषक तत्व व जल आवश्यकता अधिक होने के कारण तथा मृदा में पोषक तत्वों का सही अनुपात में पुनर्भरण न होने से इनका विभिन्न मृदाओं से खनन हुआ व समय बीतने के साथ–साथ मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी होने लगी (चित्र 1)। फलस्वरूप, मृदा उर्वरता व मृदा स्वास्थ्य में ह्रास होने लगा, जिसका समुचित प्रबंध करना कृषि वैज्ञानिकों व कृषकों के

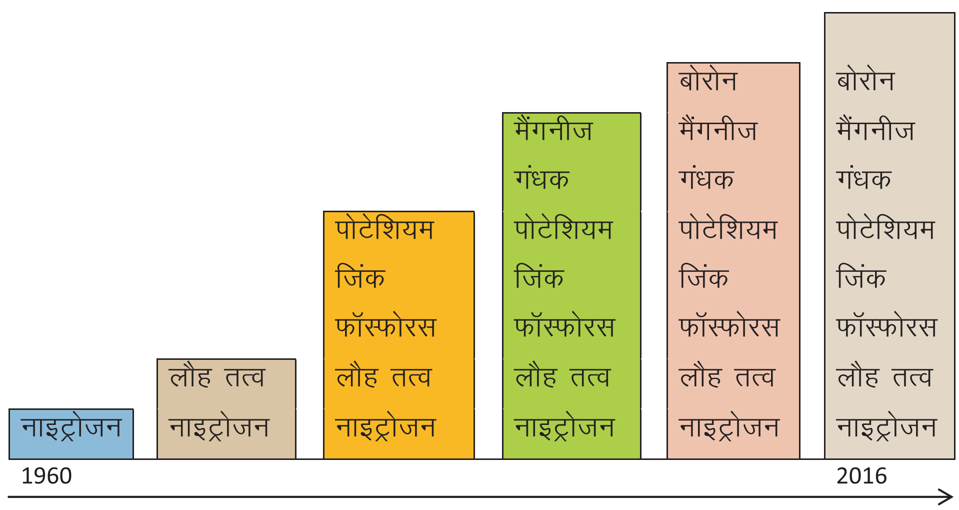

चित्र 1. मृदा में पोषक तत्वों की कमी में विस्तार

[1]प्रधान वैज्ञानिक

लिए चिन्ता का एक विषय है। कृषि योग्य भूमि के गिरते स्वास्थ्य की समस्या से भारत ही नहीं अपितु पूरा विश्व जूझ रहा है। इसी श्रृंखला में संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा वर्ष 2015 को अंतर्राष्ट्रीय मृदा स्वास्थ्य वर्ष घोषित किया गया था, जिसमें मृदा के गिरते स्वास्थ्य पर सभी देशों में जन–जागृति और मृदा की उर्वरता तथा उत्पादन क्षमता बढ़ाने के कारगर कदम उठाने का संकल्प लिया गया।

''पोषक तत्व खनन'' क्या है ?

पोषक तत्व खनन से तात्पर्य है कि जब किसी कृषिगत क्षेत्र से वहाँ उगाई जाने वाली फसल द्वारा मृदा में से अवशोषित पोषक तत्वों की मात्रा उसमें पुनर्भरण किये गए पोषक तत्वों की मात्रा से अधिक हो। पोषक तत्व खनन मृदा की उर्वरता में गिरावट का अहम् कारण बनता है, जो देश में भविष्य की खाद्य सुरक्षा हेतु गंभीर कारक हो सकता है। दुर्भाग्य से, भारत में पोषक तत्वों के खनन की चिंता काफी हद तक वैज्ञानिक समुदाय तक ही सीमित है तथा विभिन्न सहभागियों के स्तर पर फसल उत्पादन क्रियाओं के साथ पर्याप्त रूप से एकीकृत नहीं किया गया है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन, कृषि–रसायनों के अत्यधिक उपयोग, वनों की अनाधिकृत कटाई, सघन फसल पद्धति, फसलों की उच्च उपज देने वाली किस्मों का उपयोग आदि के कारण समूचे देश में मृदा की उर्वरता खतरनाक दर से घट रही है। फसल उत्पादन के लिए मृदा की उर्वरता हमेशा अच्छी बनी रहे, इसके लिए यह आवश्यक है कि जितना पोषक तत्व फसलें जमीन से उपयोग कर रही हैं, उस मात्रा का हम किसी प्रकार पुनः धरती में लौटाने का ईमानदारी से प्रयास करें। ऐसा न करने पर भूमि के पोषक तत्व भंडार का दोहन होगा और मृदा की उर्वरता में गिरावट होती जायेगी। विगत पाँच दशकों से मृदा का अत्यधिक दोहन किया जा रहा है, जिसके फलस्वरुप शुरुआत के वर्षों में मृदा में केवल नाइट्रोजन की कमी हुई, जो समय के साथ–साथ अन्य आवश्यक पोषक तत्वों में भी परिलक्षित होने लगी। परिणामस्वरुप, मृदा के स्वास्थ्य एवं उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा, जिससे टिकाऊ खेती हेतु मृदा द्वारा पोषक तत्वों की आपूर्ति करने की क्षमता भी घटने लगी।

पोषक तत्व खनन के मुद्दे

पोषक तत्व खनन के मुद्दे उन पोषक तत्वों से संबंधित हैं, जो मृदा में कम गतिशील होते हैं। उदाहरण के लिए नाइट्रोजन मृदा में अत्यधिक गतिशील है और इसके ह्रास की सबसे अधिक संभावना निक्षालन व वाष्पीकरण के माध्यम से होती है। नाइट्रोजन खनन की प्रायः चर्चा नहीं की जाती है, क्योंकि फसलों हेतु नाइट्रोजन की आपूर्ति आमतौर पर रासायनिक/जैविक उर्वरक व जैविक खाद आदि बाहरी स्त्रोतों के माध्यम से पूरी कर दी जाती है। दूसरी तरफ फॉस्फोरस, पोटेशियम, द्वितीयक और सूक्ष्म पोषक तत्वों के मामले में फसलों की अधिकतर निर्भरता भूगर्भीय स्रोतों पर ही रहती है। यदि हम फसलोत्पादन में फॉस्फोरस की बात करें तो मृदा में फॉस्फोरस स्थिरीकरण के कारण फसल की फॉस्फोरस आवश्यकता पूर्ण नहीं हो पाती। अतः इसका बाहरी अनुप्रयोग फसलों के उत्पादन हेतु अति आवश्यक हो जाता है। यही स्थिति पोटेशियम की भी है। पोषक तत्व खनन पर किये गए एक राष्ट्रव्यापी अध्ययन में यह पाया गया कि लगभग 9.7 मिलियन टन नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटेशियम (एनपीके) का मृदा से राष्ट्रव्यापी खनन होता है (19 प्रतिशत नाइट्रोजन, 12 प्रतिशत फॉस्फोरस, और 69 प्रतिशत पोटेशियम)। तीनों पोषक तत्वों में पोटेशियम के उच्च खनन का मुख्य कारण फसलों द्वारा अधिक पोटेशियम अवशोषण करना है, जबकि मृदा में इसका पुनर्भरण नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की तुलना में बहुत कम होता है।

ऐतिहासिक रूप से, भारत में द्वितीयक और सूक्ष्म पोषक तत्वों का अनुप्रयोग कुछ फसलों तक ही सीमित है। परिणामस्वरूप, धीरे–धीरे मृदाओं से इनका भी खनन होता रहता है। अन्य पोषक तत्वों से प्राप्त अनुभव के बावजूद भी ऐसा प्रतीत होता है कि हम इस प्रतीक्षा में हैं कि द्वितीयक और सूक्ष्म पोषक तत्व "अत्यधिक कमी" की श्रेणी में आयें और इसके बाद ही हम इनके प्रबंधन पर कार्य करें। हालाँकि, पिछले कुछ वर्षों में भारतीय मृदा में गंधक, जिंक और बोरॉन की बढ़ती कमी के बारे में नीतिगत और जमीनी स्तर पर जागरूकता बढ़ी है, फिर भी इन पोषक तत्वों का मृदा भंडार क्या है, इनकी कमी वाले क्षेत्र कौनसे है, फसल की मांग को पूरा करने के लिए पोषक तत्वों की कितनी

मात्रा की वास्तव में आवश्यकता है और कितना फसलों को उपलब्ध करवा पा रहे हैं, यह जानकारी बहुत ही मोटे पैमाने पर उपलब्ध है। चूंकि इन पोषक तत्वों के लिए फसल की आवश्यकता कम होती है (पीपीएम या कुछ कि.ग्रा. के स्तर पर), इसलिए हम शायद ही मृदा से इनके खनन को पर्याप्त महत्व देते हैं। इसके बावजूद तथ्य यह है कि इन पोषक तत्वों की भी अधिकांश मृदाओं में कमी पायी गयी है जिनका प्रबंधन फसलोत्पादन वृद्धि तथा देश की खाद्य और आर्थिक सुरक्षा हेतु अति आवश्यक है।

कृषक प्रक्षेत्रों में पोषक तत्वों का खनन

अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना–एकीकृत कृषि प्रणाली (एआईसीआरपी–आईएफएस) के तहत काश्तकारों के खेत में किया गया अध्ययन यह दर्शाता है कि कृषकों द्वारा प्रचलित उर्वरक प्रबंधन क्रियाएँ नाइट्रोजन की तरफ ज्यादा उन्मुख रही है (तालिका 1)। फॉस्फोरस का अनुप्रयोग अधिकांश फसल/फसल प्रणाली में अपर्याप्त हैं और कई मामलों में राज्य सरकार द्वारा की

तालिका 1. भारत में कृषक प्रक्षेत्रों में पोषक तत्वों का उपयोग और अवशोषण

फसल प्रणाली/ स्थान	उपचार	उपलब्ध करवाया गया पोषक तत्व (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर)			फसल द्वारा अवशोषित पोषक तत्व (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर)			स्पष्ट संतुलन (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर)		
		नाईट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	एन	पी	के	एन	पी	के
चावल–गेहूँ/ (कौशांबी, यूपी)	एफएफपी	206	28.4	0.0	133	22	150	73	6.4	–150.0
	एसआर	220	48.0	74.7	186	35	160	34	13.0	–85.3
	एसआर+एम	220	48.0	74.7	204	40	174	16	8.0	–99.3
बाजरा–सरसों (दीसा, गुजरात)	एफएफपी	114	37.1	0.0	171	45	104	–57	–7.9	–104.0
	एसआर	130	39.3	54.0	193	51	116	–63	–11.7	–62.1
	एसआर+एम	130	39.3	54.0	200	54	122	–70	–14.7	–65.1
बाजरा–गेहूँ/ (थसरा, गुजरात)	एफएफपी	130	34.9	0.0	129	28	65	1	6.9	–65.0
	एसआर	200	43.7	83.0	194	43	95	6	0.7	–12.0
	एसआर+एम	200	43.7	83.0	200	44	101	0	–0.3	–18.0
मक्का–चना/ (गडग, कर्नाटक)	एफएफपी	80	38.0	0.0	138	26	133	–58	12.0	–133.0
	एसआर	110	32.8	20.8	142	28	169	–32	4.8	–148.3
	एसआर+एम	110	32.8	20.8	156	32	181	–46	0.8	–160.3
मक्का–गेहूँ/ (कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश)	एफएफपी	50	14.0	21.6	678	17	53	–18	–30.0	–31.4
	एसआर	170	37.6	58.1	130	30	89	40	7.6	–30.9
	एसआर+एम	170	37.6	58.1	135	33	97	35	4.6	–38.9
कपास–बाजरा/ (दीसा, गुजरात)	एफएफपी	202	37.8	0.0	287	46	85	–85	–8.2	–85.0
	एसआर	320	43.7	83.0	324	52	91	–4	–8.3	–8.0
	एसआर+एम	320	43.7	83.0	378	53	102	–58	–9.3	–19

स्रोतः एआईसीआरपी–आईएफएस रिपोर्ट (2011–12), एफएफपी= किसानों द्वारा प्रचलित उर्वरक प्रबंधन, एसआर=राज्य सरकार द्वारा सिफारिश की गयी उर्वरक की मात्रा, एसआर+एम = राज्य सरकार द्वारा सिफारिश की गयी उर्वरक की मात्रा+सूक्ष्म और द्वितीयक पोषक तत्व, एन=नाइट्रोजन, पी=फॉस्फोरस, के=पोटेशियम

गयी सिफारिश से बहुत कम है। पोटेशियम, द्वितीयक और सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग लगभग पूरी तरह से उपेक्षित रहा है । यह अध्ययन दर्शाता है कि किसानों द्वारा औसतन रूप से फॉस्फोरस, पोटेशियम व सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग अनुशंसित पोषक तत्वों की मात्रा की तुलना में क्रमशः 38.8, 57.1 और 93 प्रतिशत कम है। यह अंतर उन संकर किस्मों में और भी ज्यादा बढ़ जाता है, जिनकी पोषक तत्व आवश्यकता ज्यादा होती है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पोषक तत्वों का खनन उच्च उपज–संभावित संकर किस्मों में अधिक तीव्र होता है, जिसके कारण मृदा में पोषक तत्वों का असंतुलन बढ़ जाता है। उर्वरक अनुप्रयोग में असंतुलन होने के कारण अनुशंसित पोषक तत्वों की मात्रा के उपयोग से प्राप्त उपज और कृषकों द्वारा प्रचलित उर्वरक प्रबंधन से प्राप्त उपज के बीच भारी अंतर हो जाता है। इस अंतर को समय के साथ कम करना अति आवश्यक है। इस कार्य हेतु मृदा जाँच आधारित पोषक तत्व प्रबंधन की अहम् भूमिका है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैसे तो देश के प्रत्येक राज्य में कृषि विश्वविद्यालयों/राज्य सरकारों द्वारा मृदा परीक्षण किया जाता है, परन्तु इसकी कोई व्यवस्थित रुपरेखा नहीं थी। वर्ष 2001 में गुजरात राज्य में मृदा परीक्षण को व्यवस्थित रूप से लागू कर कृषि आय बढ़ाने हेतु मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करने पर विचार किया गया। परिणामस्वरूप, वर्ष 2001–2010 के बीच गुजरात राज्य में 100 से अधिक मृदा प्रयोगशालाएँ स्थापित की गईं। योजना का परिणाम काफी सार्थक एवं संतोषजनक पाया गया। योजना के प्रारम्भ में गुजरात की कृषि आय वर्ष 2000–01 में 14,000 करोड़ रुपये थी, जो वर्ष 2010–11 में बढ़कर 80,000 करोड़ रुपये हो गई।

इसी प्रकार वर्ष 2009–10 में कर्नाटक सरकार ने मृदा की औसत उत्पादकता को 20 प्रतिशत तक बढ़ाने के लक्ष्य के साथ एक मिशन मोड परियोजना भूचेतना शुरू की, जिसमें राज्य सरकार के कृषि विभाग, जलग्रहण विकास विभाग, कृषि विश्वविद्यालय आदि शामिल थे। इस परियोजना को प्रभावी बनाने हेतु जो मुख्य रणनीतियाँ अपनाई गयीं, उनमें मृदा परीक्षण–आधारित पोषक तत्व प्रबंधन, ग्राम स्तर पर 50 प्रतिशत सब्सिडी पर आदानों का वितरण, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए कृषक अनुदेशक की सेवाएँ, कृषक प्रक्षेत्र स्कूल, पोस्टर प्रस्तुतीकरण, दीवार लेखन, ग्राम बैठकें, जनसंचार माध्यम के द्वारा व्यापक प्रचार आदि सम्मिलित थे। खरीफ 2009–10 के दौरान 6 जिलों के 1440 गाँवों के 2 लाख कृषकों व 2.25 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को शामिल करते हुए परियोजना कार्यान्वयन शुरू हुआ व उपचारित क्षेत्रों में 33 से 45 प्रतिशत फसल उत्पादन में वृद्धि देखी गई। परियोजना में वर्ष 2010–11 के दौरान अन्य 16 जिलों के 5030 गाँवों में 12.0 लाख हेक्टेयर प्रक्षेत्र खरीफ मौसम में तथा 3.32 लाख हेक्टेयर प्रक्षेत्र रबी मौसम में शामिल किया गया। उपचारित क्षेत्रों की फसल पैदावार में 21 से 41 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई। वर्ष 2011–12 के दौरान यह कार्यक्रम सभी 30 जिलों में लागू किया गया, जिसमें 20 लाख कृषकों को शामिल करते हुए 13,800 गाँवों में 25.4 लाख हेक्टेयर प्रक्षेत्र को खरीफ मौसम में तथा 5.40 लाख हेक्टेयर प्रक्षेत्र रबी मौसम में लिया गया। उपचारित क्षेत्रों की पैदावार में 29 से 41 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई। वर्ष 2012–13 के दौरान कार्यक्रम को 50 लाख हेक्टेयर शुष्क भूमि और 5 लाख हेक्टेयर सिंचित क्षेत्र तक बढ़ा दिया गया। चौथे वर्ष तक, परियोजना की पहुंच 26,000 गाँवों तक हो गयी। उपचारित क्षेत्रों की पैदावार में 11 से 37 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई।

उपरोक्त तथ्यों के सकारात्मक नतीजों के परिणामस्वरूप भारत सरकार द्वारा मृदा स्वास्थ्य कार्ड को एक फ्लैगशिप परियोजना के रूप में शुरू किया गया, जिसके तहत् हर तीन वर्षों के अंतराल में कृषकों को उनके खेत की मृदा स्वास्थ्य के बारे में जानकारी उपलब्ध करवाना है, ताकि मृदा में पोषक तत्वों की कमियों को दूर करने के लिए एक आधार प्रदान किया जा सके तथा मृदा परीक्षण के आधार पर पोषक तत्व प्रबंधन को विकसित किया जा सके। इसके तहत् भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीपीएस) उपकरण और राजस्व मानचित्रों की मदद से सिंचित क्षेत्र में 2.5 हेक्टेयर और वर्षा–आधारित क्षेत्र में 10 हेक्टेयर की ग्रिड में मृदा के नमूने लिए जा रहे हैं, जिनका विश्लेषण कर मुख्य रूप से मृदा के 12 मापदंडों के संबंध में आवश्यक जानकारी उपलब्ध करवाई जाती है, जिनमें मुख्य पोषक तत्व

(नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम), द्वितीयक पोषक तत्व (गंधक, कैल्शियम), सूक्ष्म पोषक तत्व (जिंक, लौह, मैंगनीज, कॉपर), पी.एच.मान, विद्युत चालकता और जैविक कार्बन सम्मिलित हैं।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की आवश्यकता

अपर्याप्त मृदा जाँचः आमतौर पर यह देखा गया है कि कृषक भाई मृदा की गुणवत्ता की जाँच में लापरवाही करते हैं। कभी–कभी जानकारी के अभाव में भी मृदा जाँच नहीं हो पाती। किसान प्रायः अपने खेत में लगातार एक ही फसल उगाते रहते हैं। बार–बार एक ही फसल बोने से मृदा की गुणवत्ता में कमी आ जाती है तथा फसल उत्पादन भी प्रभावित होता है। ऐसे में यदि कृषकों को मृदा की गुणवत्ता व उर्वरता की सही जानकारी समय रहते पता चल जाए तो फसल की अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

उर्वरक खपत में विषमताः कृषि लागत और मूल्य आयोग के आंकड़ों के अनुसार विभिन्न राज्यों में फसलों में उर्वरक उपयोग में व्यापक भिन्नता पायी गयी है। उदाहरण के लिए, कपास में उर्वरक की खपत महाराष्ट्र में सबसे अधिक (256 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर), जबकि मध्य प्रदेश में सबसे कम (107 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) थी। इसी तरह, मक्का के मामले में उर्वरक की खपत आंध्र प्रदेश में सबसे अधिक (244 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) और छत्तीसगढ़ में सबसे कम (केवल 21 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर) थी। धान के मामले में सबसे अधिक उर्वरक का उपयोग कर्नाटक (313 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) में और सबसे कम असम (17 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) में हुआ। राज्यों के बीच भी उर्वरक खपत में काफी अंतर देखा गया है जैसे कि पंजाब में 250 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर, बिहार में 212 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर, हरियाणा में 207 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर से लेकर नागालैंड में 4.8 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर और अरुणाचल प्रदेश में 2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है। इस प्रकार की विसंगतियों को दूर करने के लिए मृदा स्वास्थ्य कार्ड की अहम् भूमिका है ।

असंतुलित उर्वरक उपयोगः देश के कृषि विशेषज्ञ समूह ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि कृषकों में जानकारी के अभाव के कारण खेती में रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित मात्रा में उपयोग किया जा रहा है, जिससे मृदा का उपजाऊपन नष्ट हो रहा है। वर्तमान में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम (एनपीके) पोषक तत्वों के उपयोग का अनुपात 6.7 : 2.4 : 1 है, जो 4 : 2 : 1 के आदर्श अनुपात की तुलना में नाइट्रोजन की तरफ अत्यधिक विषम है (तालिका 1)। उर्वरकों के अत्यधिक और असंतुलित उपयोग के परिणामस्वरूप, उत्पादित खाद्यान्न की मात्रा जो 1970 के दशक में 13 कि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. उर्वरक थी, घटकर 2010 में केवल 4 कि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. उर्वरक रह गई।

यह एक अतुलनीय सत्य है कि फसल उत्पादन सीधे तौर पर मृदा उर्वरता से जुड़ा है, जिस पर कृषकों की प्रगति निर्भर करती है। खाद्यान्नों, दालों, तेलीय फसलों, गन्ना उत्पादन, फलों, सब्जियों, रेशों, चारा फसलों आदि की लगातार बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए संतुलित रासायनिक उर्वरकों को बढ़ावा देना अति आवश्यक हो गया है। सरकार का मानना है कि अगर कृषि उपज वृद्धि से शुद्ध आय में बढ़ोतरी होगी तो किसान कल्याण में सुधार होगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सरकार का दृष्टिकोण खेती की लागत को कम करना, प्रति भूमि इकाई द्वारा उच्च उत्पादन तथा कृषि उपज की लाभकारी कीमतों को प्राप्त करना है। इसलिए, माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी कहते हैं 'स्वस्थ धरा, खेत हरा'। इसी सोच को लेकर भारत सरकार ने कृषक कल्याण एवं फसल की उच्च उत्पादकता तथा गुणवत्ता वृद्धि पर ध्यान केन्द्रित करते हुए 19 फरवरी 2015 को राजस्थान के सूरतगढ़ क्षेत्र से 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' योजना का शुभारम्भ किया, ताकि देश में हर खेत की पोषक स्थिति का आँकलन किया जा सके। कुछ राज्य पहले से ही मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी कर रहे हैं, लेकिन यह पाया गया है कि राज्यों में मृदा परीक्षण, मृदा स्वास्थ्य कार्ड का प्रारूप और वितरण के लिए एक समान मानदंड नहीं था। इन पर एक समग्र दृष्टिकोण रखते हुए, केंद्र सरकार ने मृदा स्वास्थ्य कार्ड पोर्टल शुरू करने जैसे उपाय भी किए हैं। यह मृदा के नमूनों के पंजीकरण, मृदा के नमूनों के परीक्षण के परिणामों के अभिलेखन और उर्वरक सिफारिशों के साथ मृदा स्वास्थ्य कार्ड के निर्माण के लिए अत्यंत उपयोगी है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के लाभ

मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से कृषकों के खेतों की मृदा उर्वरता, फसलों में उर्वरकों की आवश्यक मात्रा, मृदा की क्षारीयता व लवणता, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन आदि की सिफारिश के बारे में सूचना प्रदान की जाती है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना कृषकों के खेतों की मृदा की जाँच करके तदनुसार वैज्ञानिक सुझावों के साथ उन्हें एक प्रारूपित रिपोर्ट प्रदान करती है जिससे यह पता लगता है कि उनके खेत की मृदा में किन–किन पोषक तत्वों की कमी है, कौनसी फसल उनके खेत की मृदा उर्वरता अनुसार ज्यादा उपयुक्त है तथा कितनी मात्रा में उर्वरक डालने से अधिक उत्पादन एवं अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की सहायता से किसान अपनी फसलों के उच्च उत्पादन के साथ–साथ मृदा की उर्वरता बनाये रखने की भी योजना बना सकते हैं। मृदा स्वास्थ्य कार्ड रासायनिक उर्वरकों के विवेकपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देता है ताकि खेती पर होने वाली लागत को कम किया जा सके। मृदा स्वास्थ्य कार्ड यह भी सुनिश्चित करता है कि किसान आवश्यकता से अधिक मात्रा में उर्वरकों की खरीद पर अनावश्यक रूप से पैसा खर्च न करें तथा जिन क्षेत्रों में पोषक तत्वों की आवश्यकता है, वहाँ उनका समुचित प्रयोग भी करें। उपरोक्त लाभ के साथ मृदा स्वास्थ्य कार्ड के निम्नलिखित अन्य उद्देश्य भी है:

- कृषि छात्रों की भागीदारी, उनका क्षमता निर्माण तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद/राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के साथ प्रभावी जुड़ाव के माध्यम से मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं के कामकाज को मजबूत करना।
- पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता बढ़ाने के लिए जिलों में मृदा परीक्षण–आधारित पोषक तत्व प्रबंधन को विकसित करना ।
- आधुनिक व लाभकारी पोषक तत्व प्रबंधन क्रियाओं को बढ़ावा देने के लिए जिला और राज्य स्तर के कर्मचारियों और प्रगतिशील कृषकों की क्षमता वर्द्धन करना।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड के प्रभाव

उर्वरक उपयोग व बचत: मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सिफारिशों का तीन महत्वपूर्ण फसलों (धान, कपास और सोयाबीन) में मृदा स्वास्थ्य कार्ड से पहले व मृदा स्वास्थ्य कार्ड के बाद उर्वरक उपयोग, उर्वरकों पर लागत व प्राप्त उपज पर एक तुलनात्मक अध्ययन किया गया। अध्ययन में फसलों के क्षेत्र, प्रमुख उर्वरकों (यूरिया, डीएपी, एसएसपी और एमओपी) के उपयोग, खेती की लागत और पैदावार में परिवर्तन का आँकलन किया गया। उपरोक्त तीनों फसलों के लिए कृषकों ने मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के बाद इन फसलों के अंतर्गत क्षेत्र में गिरावट होने के बारे में बताया। अधिकांश कृषकों ने मृदा स्वास्थ्य कार्ड के बाद धान और कपास जैसी अधिक आदान–गहन फसलों से कम आदान–गहन फसलों में विविधता लाई। कुल मिलाकर, धान फसल क्षेत्र के कृषकों ने यूरिया के उपयोग में लगभग 13 प्रतिशत, डीएपी/एसएसपी में लगभग 12 प्रतिशत और पोटेशियम के उपयोग में लगभग 4 प्रतिशत की कमी की। यह उर्वरकों के संतुलित उपयोग की ओर बढ़ने का एक स्वस्थ संकेत है। तीनों फसलों की लागत में प्रति एकड़ लगभग 8 से 10 प्रतिशत की गिरावट देखी गई, परन्तु फसलों की पैदावार में वृद्धि हुई। विभिन्न कृषि आकार वर्गों में, छोटे और सीमांत कृषकों के साथ–साथ बड़े कृषकों ने भी सभी चयनित फसलों की लागत में गिरावट का अनुभव किया (तालिका 2)।

अध्ययन के दौरान राज्यों के 157 कृषकों से गहन आंकड़े एकत्र किये गए। मृदा स्वास्थ्य कार्ड मिलने के बाद 157 कृषकों में से 149 कृषकों ने नाइट्रोजन का उपयोग कम किया और केवल 8 कृषकों ने वृद्धि की। 157 कृषकों में से 119 कृषकों ने फॉस्फोरस का उपयोग कम किया और केवल 38 कृषकों ने मृदा स्वास्थ्य कार्ड के बाद अपने फॉस्फोरस का उपयोग बढ़ाया। कृषकों ने फॉस्फोरस के उपयोग में औसतन 11.8 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की कमी की। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के बाद 60 कृषकों ने 12 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की औसत वृद्धि के साथ पोटेशियम उपयोग में वृद्धि की। लगभग 50 प्रतिशत कृषकों ने कहा कि मृदा स्वास्थ्य कार्ड ने उन्हें मृदा के स्वास्थ्य के बारे में जागरूक किया और उन्हें उर्वरक के उपयोग को कम करने में मदद की,

तालिका 2. उर्वरक उपयोग, फसल की पैदावार और फार्म आकार श्रेणी द्वारा शुद्ध लाभ पर मृदा स्वास्थ्य कार्ड का प्रभाव

फसल/खेत का आकार	एस एच सी	नाईट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	उर्वरक पर व्यय	खाद पर व्यय	उपज (टन प्रति हे.)	शुद्ध रिटर्न (रुपये प्रति हेक्टेयर)
		(कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर)			(रुपये प्रति हेक्टेयर)			
कपास								
वृहद किसान	बी	128.5	66	30	7144	1580	1.9	34227
	ए	108.5	59	26	6170	2045	2.0	46709
प्रतिशत परिवर्तन		–15.6	–10.6	–13.3	–13.6	29.4	5.3	36.5
लघु और सीमांत किसान	बी	126.5	60	25	6934	1973	1.80	24264
	ए	102.7	56	22	5725	2485	1.85	30299
प्रतिशत परिवर्तन		–18.8	–6.7	–12.0	–17.4	26.0	2.8	24.9
धान								
वृहद किसान	बी	85	43.25	21	6195	485	5.5	28750
	ए	69	38	19.5	5115	580	5.7	34460
प्रतिशत परिवर्तन		–18.8	–12.1	–7.1	–17.4	19.6	3.6	19.9
लघु और सीमांत किसान	बी	72	33	19.2	5617	659	4.05	15818
	ए	66	31.7	18.2	4956	878	4.07	19601
प्रतिशत परिवर्तन		–8.3	–3.9	–5.2	–11.8	33.2	0.6	23.9
सोयाबीन								
वृहद किसान	बी	33	47	8	2811	595	1.3	5318
	ए	28	42	8.7	2500	850	1.3	6780
प्रतिशत परिवर्तन		–15.2	–10.6	8.7	–11.1	42.9	0.0	27.5
लघु और सीमांत किसान	बी	28	44	7	2524	790	1.3	7416
	ए	24.55	38	7	2050	933	1.4	11640
% परिवर्तन		–12.3	–13.6	0.0	–18.8	18.1	7.7	57.0

नोटः एसएचसी= मृदा स्वास्थ्य कार्ड, बी = एसएचसी योजना से पहले, ए = एसएचसी योजना के बाद
एन =नाइट्रोजन , पी= फॉस्फोरस, के = पोटेशियम

जिससे अंततः खेती की लागत में कमी आई। कुल 157 में से 143 कृषकों ने मृदा स्वास्थ्य कार्ड की जानकारी के अनुसार अनुशंसित उर्वरक मात्रा उपयोग के बाद उत्पादकता में वृद्धि का अनुभव किया। कुल मिलाकर मृदा स्वास्थ्य कार्ड प्राप्त करने के बाद कृषकों ने मुख्य रूप से नाइट्रोजन का उपयोग कम कर दिया और सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग में वृद्धि की (तालिका 3)।

तालिका 3. विभिन्न फसलों में मृदा स्वास्थ्य कार्ड से पहले व बाद में उपयोग किये गए पोषक तत्वों का तुलनात्मक विवरण (कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर)

फसलें	मृदा स्वास्थ्य कार्ड से पहले				मृदा स्वास्थ्य कार्ड के बाद			
	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटेशियम	सूक्ष्म पोषक तत्व	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटेशियम	सूक्ष्म पोषक तत्व
कपास	316	119	56	0	237	43	30	0
मूंगफली	92	106	28	0	32	51	44	0
मक्का	283	70	99	0	173	51	55	125
धान	182	81	53	3	109	59	42	18
रागी	109	132	66	0	75	54	35	18
सूर्यमुखी	119	79	0	0	96	62	0	0

राजस्थान राज्य के श्रीगंगानगर जिले में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के प्रथम वर्ष में एक अध्ययन किया गया, जिसमें यह विश्लेषण किया गया कि मृदा स्वास्थ्य कार्ड प्राप्त करने के बाद उर्वरकों के उपयोग में कृषकों के व्यवहार में कोई बदलाव आया है या नहीं। साथ ही यह भी अध्ययन किया गया कि किन कारकों से कृषकों के बीच जागरूकता के स्तर में अंतर आता है। अध्ययन में यह निष्कर्ष निकला कि मृदा स्वास्थ्य कार्ड प्राप्त करने के प्रारम्भिक वर्षों में कृषकों द्वारा उर्वरक खपत स्तर में अंतर तो आया, परन्तु कोई सार्थक परिवर्तन नहीं हुआ, जिसका मुख्य कारण लोगों में जागरूकता का अभाव था (चित्र 2)। परन्तु जब कृषकों के बीच जागरूकता पैदा करने के लिए एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में ग्राम सेवक को जोड़ा गया तो यह पाया गया कि योजना के जागरूकता स्तर और रासायनिक उर्वरकों के समुचित उपयोग के लाभों में काफी अंतर हुआ।

कृषि उपज व कृषकों की आय में वृद्धि: देश के 16 राज्यों के 136 जिलों के कृषक प्रक्षेत्रों पर किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि मृदा स्वास्थ्य कार्ड के उपयोग से धान के उत्पादन में 10 से 25 प्रतिशत, मोटे अनाज के उत्पादन में

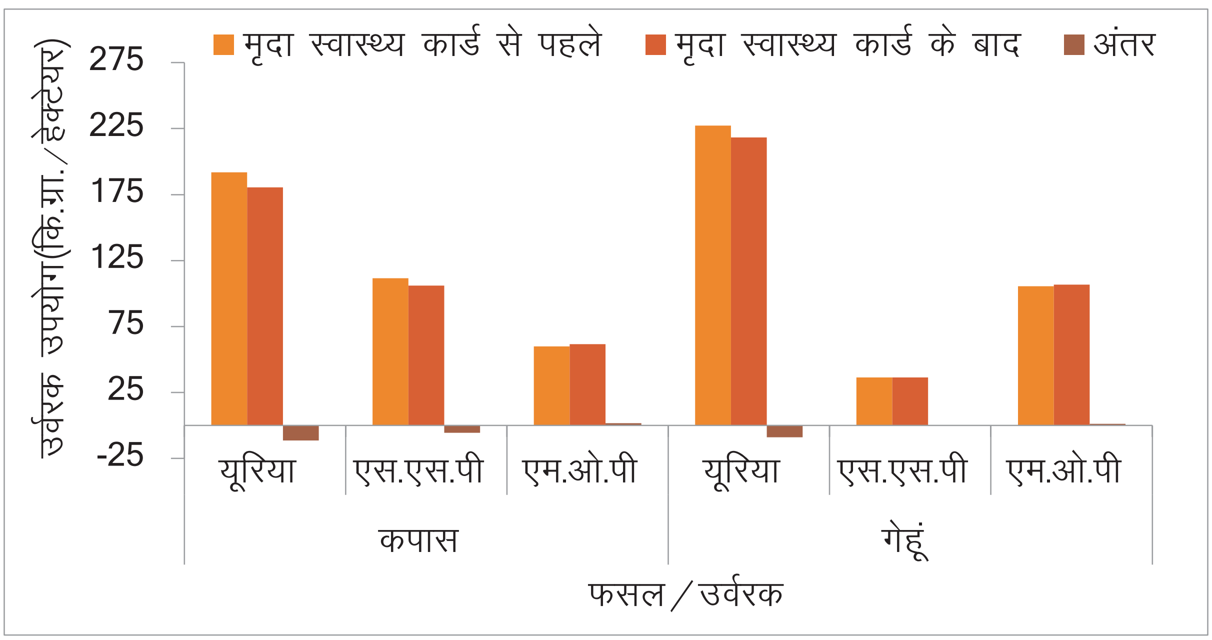

चित्र 2 श्रीगंगानगर (राजस्थान) में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के प्रथम वर्ष में विभिन्न फसलों द्वारा उर्वरक उपयोग में भिन्नता

10 से 15 प्रतिशत, दालों में 10 से 30 प्रतिशत और तिलहन के उत्पादन में 35 से 66 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वर्ष 2017 में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का कृषकों की आय पर प्रभाव नामक एक अध्ययन किया गया तथा यह पाया कि खरीफ फसलों में धान, सोयाबीन और मक्का की उपज में अनुशंसित उर्वरक मात्रा को अपनाने के बाद क्रमशः 19.42, 13.79 और 9.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषकों द्वारा मृदा परीक्षण के बाद दी गयी उर्वरक की मात्रा द्वारा धान में प्रति एकड़ शुद्ध आय रुपये 11,231 से बढ़कर रुपये 17,385 (54.8 प्रतिशत वृद्धि), सोयाबीन में रुपये 6696 से बढ़कर रुपये 11,228 (67.7 प्रतिशत वृद्धि) तथा मक्का में रुपये 3,380 से बढ़कर रुपये 8,105 (139.8 प्रतिशत वृद्धि) हो गयी (तालिका 4)। कृषकों द्वारा अनुशंसित उर्वरक मात्रा अपनाने के बाद लाभ–लागत अनुपात धान में 1.5 से 1.7, सोयाबीन में 1.6 से 2.0 और मक्का में 1.4 से बढ़कर 1.9 हो गया। इस प्रकार मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना कृषकों के लिए उनकी आय बढ़ाने हेतु अत्यधिक लाभकारी पाई गई। हालांकि, उर्वरकों की अनुशंसित उर्वरक मात्रा को व्यापक रूप से अपनाने के लिए इसके लाभों के बारे में कृषकों के बीच जागरूकता पैदा करने के साथ–साथ मृदा परीक्षण सेवाओं/प्रयोगशालाओं को सुदृढ़ करने की भी नितान्त आवश्यकता है।

एक अन्य अध्ययन में यह पाया गया कि प्रति हेक्टेयर उर्वरक व्यय में आई कमी से 1000 रुपये तक की बचत की जा सकती है और कुल लाभ में वृद्धि भी होती है। विभिन्न फसलों में संतुलित उर्वरक अपनाने के कारण औसतन रूप से रूपये 17,000 प्रति हेक्टेयर लाभ प्राप्त हो सकता है (चित्र 3)।

तालिका 4. मृदा परीक्षण का प्रमुख फसलों द्वारा प्राप्त आय पर प्रभाव

	मृदा परीक्षण से पहले (रुपये प्रति एकड़)	मृदा परीक्षण के बाद (रुपये प्रति एकड़)	अंतर (रुपये प्रति एकड़)
धान			
कुल लागत	23639	26691	3052 (12.91)
सकल आय	34870	44076	9205 (26.40)
शुद्ध आय	11231	17385	6153 (54.79)
लाभ–लागत अनुपात	1.5	1.7	0.2 (13.33)
सोयाबीन			
कुल लागत	10900	10714	–186 (–1.70)
सकल आय	17596	21942	4346 (24.70)
शुद्ध आय	6696	11228	4532 (67.70)
लाभ–लागत अनुपात	1.6	2.0	0.4 (25.00)
मक्का			
कुल लागत	8176	9235	1058 (12.94)
सकल आय	11556	17340	5784 (50.05)
शुद्ध आय	3380	8105	4726 (139.83)
लाभ–लागत अनुपात	1.4	1.9	0.5 (35.71)

नोटः कोष्ठक में दिए गए आंकड़े मृदा परीक्षण के बाद के प्रतिशत अंतर को दर्शाते हैं

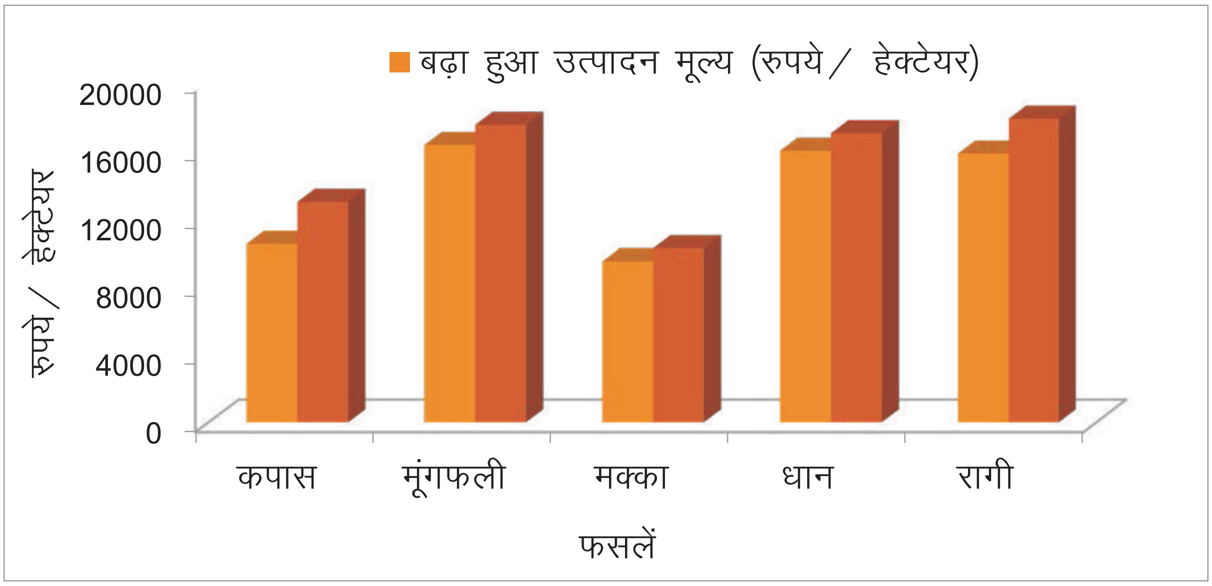

चित्र 3. मृदा स्वास्थ्य कार्ड अपनाने के बाद विभिन्न फसलों के मूल्य में बढ़ोतरी व कुल लाभ

उपसंहार

पोषक तत्व खनन मृदा की उर्वरता में गिरावट का मुख्य कारण है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि वैज्ञानिक सिफारिश के अनुसार उर्वरकों की इष्टतम मात्रा और उपयुक्त फसल प्रणाली का उपयोग करना चाहिए जिसके लिए मृदा परीक्षण अति आवश्यक है। वैसे तो भारत में मृदा परीक्षण कार्यक्रम वर्ष 1955–1956 में ही शुरू हो गया था, परन्तु वह कृषकों की आवश्यकता अनुसार होता था। परिणामस्वरूप, जिन खेतों का मृदा परीक्षण नहीं हुआ उनमें धीरे–धीरे आवश्यक पोषक तत्वों के खनन के कारण उर्वरता में कमी होती गई। अतः प्रत्येक किसान को मृदा परीक्षण का लाभ मिले तथा राष्ट्रीय स्तर पर तर्क संगत उर्वरक उपयोग से फसल उत्पादन बढ़े, इस विचार के साथ मृदा स्वास्थ्य कार्ड कार्यक्रम शुरू किया गया, जिसके परिणाम काफी संतोषजनक पाये गये। कुछ क्षेत्रों में उर्वरक उपयोग में कमी के साथ–साथ संतुलित उपयोग की ओर रुझान प्राप्त हुए, जिससे फसलों की पैदावार में वृद्धि हुई व मृदा स्वास्थ्य में सुधार हुआ। भविष्य में इसे अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए हर राज्य में मृदा प्रयोगशालाओं के बुनियादी ढांचे के विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए। दीर्घकालिक आधार पर मृदा स्वास्थ्य में सुधार के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों, जैव उर्वरकों और जैविक आदानों की अनुशंसित मात्रा के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

★ ★ ★

भारत में उष्ण शुष्क क्षेत्रों में चरागाहों की क्षरण स्थिति तथा भावी नीति विकल्प

जे.पी. सिंह[1] एवं आर.एस. चौरसिया[1]

भाकृअनुप– भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी (उ.प्र.)

चरागाहों की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और पर्यावरण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। स्थाई पशुधन उत्पादन की विकासात्मक योजनाओं के लिए चरागाहों की स्थिति और उत्पादकता की सटीक जानकारी आवश्यक है। अभी तक देश में चरागाहों के सही आंकड़ों का अभाव रहा है, जो कि चरागाहों के संवर्धन एवं नियोजन के लिए आवश्यक है। भूमि उपयोग से संबंधित सांख्यिकीय आंकड़े भी चरागाहों की सही जानकारी नहीं देते हैं। ऐसी स्थिति में सुदूर संवेदन प्रणाली के माध्यम से प्राप्त सूचना का अध्ययन करके तथा जीपीएस के माध्यम से उनका मूल्यॉंकन करके इन चरागाहों का सही क्षेत्रफल, अवस्थिति, क्षरण की स्थिति तथा वर्तमान एवं संभावित उत्पादकता का आंकड़ा तैयार किया जा सकता है तथा क्षेत्र विशेष के लिए वैज्ञानिक विधि द्वारा प्रबंधन किया जा सकता है।

भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसन्धान संस्थान, झाँसी ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस संस्थान द्वारा अभी हाल ही में सुदूर संवेदन तकनीकी, भौगोलिक सूचना प्रणाली एवं जी.पी.एस. का प्रयोग करके पूरे देश के चरागाहों का अध्ययन किया गया है तथा राज्यवार चरागाहों के अंतर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादकता का आंकड़ा सटीकता के साथ तैयार किया गया है। संस्थान के पूर्ववर्ती शोध अध्ययनों में देश के विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों में चरागाहों की दशा तथा विभिन्न समयावधियों में उनके क्षेत्र विस्तार और उत्पादकता में, विशेषकर शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में, क्षरण एवं उसके कारणों की जानकारी के आधार पर समुचित प्रबंधन हेतु सुझाव दिये गए हैं।

अत्यधिक चराई और वनों की कटाई ने चरागाहों को निम्नीकृत बंजर भूमि में बदल दिया है। वर्तमान आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में लगभग 11.50 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर चरागाह स्थित हैं, जिनकी औसत उत्पादकता 3.22 टन शुष्क भार प्रति हेक्टयर है, लेकिन शुष्क एवं अर्ध– शुष्क क्षेत्रों (मुख्य रुप से राजस्थान एवं गुजरात) में यह उत्पादकता 2.75 टन शुष्क भार प्रति हेक्टेयर से कम और यदि क्षेत्रीय आधार पर देखा जाये तो यह आंकड़ा 1 टन शुष्क भार प्रति हेक्टेयर से कम तक मिलता है। उदाहरणस्वरुप, बुंदेलखंड, उत्तरी पश्चिमी छत्तीसगढ़ और राजस्थान के पश्चिमी पठारी/मैदानी भाग आदि। यह एक विश्वव्यापी घटना है, क्योंकि दुनिया के 80 प्रतिशत से अधिक उष्ण एवं शुष्क कटिबंधीय चरागाह क्षेत्र निम्नीकरण के विभिन्न स्तर पर हैं और गिरावट की यह दर सालाना 17.7 मिलियन हेक्टेयर है, जबकी दुनिया भर के लगभग 40 प्रतिशत पशुओं को उनके आहार के लिए चराने के लिए उपयोग किया जाता है।

शुष्क तथा अर्ध–शुष्क चरागाहों की स्थिति अत्यधिक चराई दबाव (20 से 30 वयस्क मवेशी इकाई प्रति हेक्टेयर) के चलते क्षरण की चरम स्थिति तक पहुँच गयी है। वन विभाग द्वारा केवल उन चरागाहों का प्रबंधन किया जाता है, जो कि उनके अधिकार क्षेत्र में आते हैं। जबकि अधिकांश भाग में खुले चारागाह हैं। क्षरण का प्रभाव न सिर्फ उनकी उत्पादकता पर पड़ा है, बल्कि पिछले 2 से 3 दशकों में इन चरागाहों में घास की पौष्टिकता वाली बहुत सारी किस्में या तो विलुप्त हो चुकी हैं या फिर बहुत कम बची हैं। साथ ही साथ इन चरागाहों में बहुत सी घास/पतवार और वनस्पतियाँ, जो चराई के उपयुक्त नहीं हैं, उनका अतिक्रमण हो गया है। चराई के अनुपयुक्त वनस्पतियाँ भी एक प्रमुख समस्या बनकर उभर रही हैं।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह के आधार पर राज्यवार चरागाहों का क्षेत्रफल, तथा उत्पादन के आकडों के साथ ही कुछ विशिष्ट क्षेत्रों के आंकड़े उच्च रेसोलुसन वाले छविचित्रों के आधार पर तैयार किये गए हैं, उदाहरण के लिए, बुन्देलखंड, कच्छ, सौराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उत्तरी पठारी क्षेत्र, हिमाचल, जम्मू–कश्मीर, लद्धाख, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश आदि।

उष्ण शुष्क कृषि-जलवायु क्षेत्रों में चरागाहों की स्थिति

भारत में शुष्क तथा अर्ध–शुष्क क्षेत्र का विस्तार मुख्यतः यमुना पार मध्य (सेंट्रल) और पश्चिमी राज्यों में मिलता है, जिसमें राजस्थान, उत्तरी पश्चिमी गुजरात, मध्य उत्तरी क्षेत्र, उत्तर प्रदेश का बुंदलखंड क्षेत्र एवं छत्तीसगढ़ में पश्चिमी सीमा से सटे आँशिक भू–भाग (मानचित्र–1 क)। कृषि–जलवायु वर्गीकरण के आधार पर इसे तीन भागों में विभक्त किया गया है (मानचित्र–1 घ):

1. मध्य पठार और पहाड़ियाँ
2. गुजरात के मैदान और पहाड़ियाँ
3. पश्चिमी शुष्क क्षेत्र

उष्ण शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में चरागाहों की वर्तमान स्थिति, क्षेत्रीय वितरण एवं उत्पादकता का अवलोकन करने के लिए सुदूर संवेदन छविचित्र का उपयोग करके पूरे क्षेत्र का मोजैक तैयार किया गया (मानचित्र–1 ख) तथा एरदास इमेजिन और आर्क जीआईएस सॉफ्टवेयर का प्रयोग करके एनडीवीआई के आधार पर चरागाहों का क्षेत्रीय वितरण मानचित्र तैयार किया गया (मानचित्र–1 ग) तथा इसका भौगोलिक आंकड़ाकोष राज्यवार तथा कृषि जलवायु क्षेत्र के आधार पर तैयार किया गया है।

उष्ण-शुष्क कटिबंधीय कृषि जलवायु क्षेत्र में चरागाहों का निरुपण

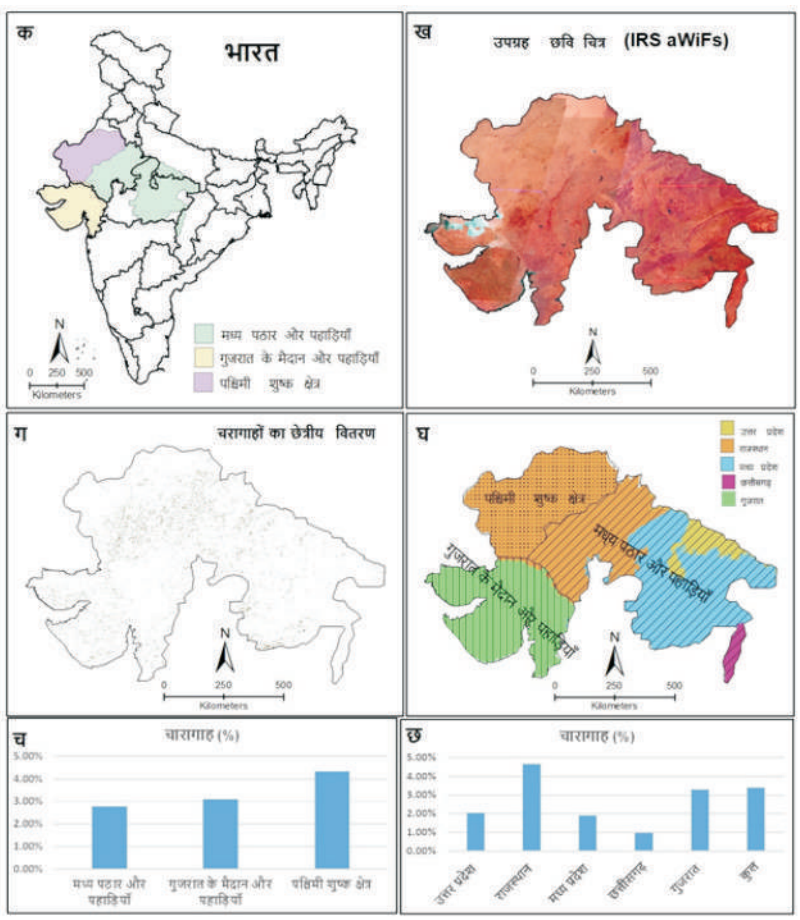

मानचित्र-1

अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार चरागाहों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल 2,45,0922.47 हेक्टेयर है, जो कि कुल क्षेत्रफल का 3.23 प्रतिशत है जबकि पूरे भारत में चरागाहों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल 3.50 प्रतिशत है। कृषि–जलवायु प्रदेशों के आधार पर चरागाहों का क्षेत्रफल सारणी क्रमांक 1 में दर्शाया गया है।

सारणी क्रमांक 2 में चरागाहों के अंतर्गत राज्यों के आधार पर क्षेत्रफल दर्शाया गया है साथ ही इसका ग्राफिक्स दंड आरेख के माध्यम से मानचित्र 1 च और छ मे दर्शाया गया है।

सारणी क्र. 1: उष्ण कटिबंधीय कृषि जलवायु क्षेत्र के आधार पर चरागाहों का भौगोलिक वितरण

उष्ण शुष्क/अर्ध–शुष्क कटिबंधीय कृषि–जलवायु क्षेत्र	भौगोलिक क्षेत्र (हेक्टेयर)	चरागाह क्षेत्र (हेक्टेयर)	चरागाह क्षेत्र (%)	उत्पादकता (टन शुष्क भार प्रति हेक्टेयर)
मध्य पठार और पहाड़ियाँ	39380177.22	1095598.41	2.78	1.50
गुजरात के मैदान और पहाड़ियाँ	18856887.65	583776.85	3.10	1.78
पश्चिमी शुष्क क्षेत्र	17755011.74	771547.21	4.35	1.10
कुल	**75992076.61**	**2450922.47**	**3.23**	**1.44**

सारणी क्र. 2: उष्ण कटिबंधीय कृषि जलवायु क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले राज्यों के आधार पर चरागाहों का भौगोलिक वितरण

राज्य	भौगोलिक क्षेत्र (हेक्टेयर)	चरागाह क्षेत्र (हेक्टेयर)	चरागाह क्षेत्र (हेक्टेयर)	उत्पादकता (टन शुष्क भार प्रति हेक्टेयर)
उत्तर प्रदेश (द.प. क्षेत्र)	3385822.44	65961.70	1.95	1.50
राजस्थान	32578175.52	1435910.52	4.41	1.23
मध्य प्रदेश (म.उ. क्षेत्र)	20545303.34	368364.67	1.79	1.80
छत्तीसगढ़ (प. क्षेत्र)	1136084.51	10288.51	0.91	1.80
गुजरात	18346690.80	570397.07	3.11	1.70
कुल	**75992076.61**	**2450922.47**	**3.23**	**1.44**

चरागाहों के क्षरण एवं संवर्धन हेतु प्रबंधन नीति

उष्ण शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में खुले चरागाहों में अनियंत्रित चराई, कम वर्षा, मृदा क्षरण और अनुपयुक्त वनस्पतियों एवं झाड़ियों के प्रसार से विगत 30 से 35 वर्षों में इन क्षेत्रों में न सिर्फ चरागाहों की उत्पादकता का ह्रास हुआ है, बल्कि मृदा क्षरण भी तेज गति से हो रहा है। इसका एक उदाहरण है, उत्तरी बुंदेलखंड में चम्बल एवं इसकी सहायक नदी/नालों के सामानांतर बहुत बड़े क्षेत्र में अच्छी उत्पादकता वाले चरागाह क्षेत्र रेवाइन्स (उतखात क्षेत्र) में बदलते जा रहे हैं तथा बदलाव की यह गति 410 हेक्टेयर प्रतिवर्ष सिर्फ जालौन जिला एवं उसके आस पास के क्षेत्रों में दर्ज की गयी है। सूखा तथा अतिवर्षा की वजह से लाखों टन मृदा बर्बाद हो रही है।

नीति आयोग (योजना आयोग), भारत सरकार द्वारा चरागाह एवं मरुभूमि पर गठित टास्क फोर्स की रिपोर्ट ने इसी बात को सबसे महत्वपूर्ण माना है कि चरागाह–मरुभूमि पारिस्थितिकी तंत्र बहुत ही संवेनदनशील होता है। जलवायु की प्रतिकूलता, चराई दवाब एवं सामान्यतः समाज का इन खुले चरागाहों के प्रति नकारात्मक भाव इस महत्वपूर्ण परिस्थिति तंत्र को छिन्न भिन्न कर रहे है। भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी ने ऐसे चरागाहों के प्रबंधन हेतु जो नीति बनाई है एवं आधुनिक तकनीक का

उपयोग करके ऐसे निम्नीकृत चरागाहों का संवर्धन कर रही है उनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं :

1. चराई दबाव को नियंत्रित करना एवं पशुओं की संख्या देखभाल क्षमता के आधार पर रखना।
2. मिश्रित पशुओं (बड़े रुमिनेंट के साथ छोटे रुमिनेंट) जैसे गाय, भेड़, बकरी आदि को वयस्क पशु इकाई के आधार पर नियंत्रित करना।
3. मिश्रित पशुओं का चराई व्यवहार अलग अलग होता है अतः प्रति यूनिट चरागाह पर दबाव कम पड़ता है। इसके साथ चक्रीय चराई एवं डेफर्ड रोटेशनल चराई से भी प्रति इकाई दबाव कम पड़ता है।
4. निम्नीकृत चरागाहों की एक प्रमुख समस्या पौष्टिकता वाले घास की किस्मों का विलुप्त होना तथा पशुओं द्वारा न चरे जाने वाले घास/खरपतवारों की संख्या बढना है। ऐसे में इनको हटाना तथा उपयुक्त घास बीजों की बुआई आवश्यक हो जाती है। यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि चरागाहों की उत्पादकता एवं पोष्टिकता को बढाने के लिए उपयुक्त घास बीजों के साथ–साथ रेंज चारा की दलहनी एवं बहुवर्षीय घास बीजों को मिश्रित करके बुआई करें।
5. चरागाहों में मृदा क्षरण को रोकने के लिए खाई खोदना बहुत लाभकारी होता है। यह मृदा क्षरण को रोकने के साथ ही साथ मृदा–नमी को भी लम्बे समय तक सुरक्षित रखता है।
6. चरागाहों में बीजों तथा उर्वरकों के छिडकाव में मानव गतिविधियों की जगह पर ड्रोन के इस्तेमाल करने से समय और खर्च दोनों की बचत होती है।

★ ★ ★

प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन में आधुनिक तकनीक सुदूर संवेदन का अनुप्रयोग

बृजेश यादव[1], लालचंद मालव[1], महावीर नोगिया[1], आर.एल. मीणा[2], आर.पी. शर्मा[3] एवं बी.एल. मीना[3]

भाकृअनुप–राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, क्षेत्रीय केंद्र, उदयपुर–31300

भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर ही आधारित है, इसलिए कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकों का उपयोग होना अनिवार्य है। इन नवीनतम तकनीकों में से सदूर संवदेन तकनीक एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सुदूर संवेदन का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु के साथ सीधे संपर्क में आये बिना उस वस्तु या घटना के बारे में जानकारी का अधिग्रहण करना। यह एक ऐसी तकनीक है, जिसके माध्यम से बिना किसी भौतिक सम्पर्क के पृथ्वी के धरातलीय रूपों और संसाधनों का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से किया जाता है। मूल रूप से सुदूर संवेदन तकनीक दूरी पर उपस्थित भौतिक वस्तुओं की पहचान एवं लक्षण वर्णन के लिए एक गैर–विनाशकारी तकनीक है। सुदूर संवेदन और भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के लिए बहुत फायदेमंद साबित हुआ है। सुदूर संवेदन उन प्रौद्योगिकियों में से एक है, जो किसानों को एक सुविधाजनक और लागत–प्रभावी तरीके से फसल उत्पादन के विभिन्न चरणों में फसल, मृदा और जलवायु के बारे में जानकारी देता है। यह संभावित समस्याओं का पता लगाने के लिए एक प्रारंभिक संकेतक के रूप में काम कर सकता है और समय पर इन समस्याओं का निवारण करने में भी सहायक है।

सुदूर संवेदन के मुख्य घटक

सुदूर संवेदन प्रणाली के प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं :

- ऊर्जा स्रोत (सूर्य / स्व–उत्सर्जन)
- ऊर्जा का पृथ्वी के धरातल तक संचरण
- ऊर्जा का लक्ष्य के साथ अन्योन्य क्रिया
- सेंसर द्वारा संकेत को ग्रहण करना
- व्याख्या एवं विश्लेषण

सुदूर संवेदन तकनीक के प्रकार

सुदूर संवेदन प्रणाली मुख्यतः दो प्रकार की होती है– सक्रिय सुदूर संवेदन तकनीक तथा निष्क्रिय सुदूर संवेदन तकनीक। सक्रिय सुदूर संवेदन प्रणाली सूर्य के ऊपर निर्भर नहीं करती है और सक्रिय दूरस्थ सेंसर अपनी स्वयं की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा उत्सर्जित करते हैं, जो लक्ष्य को चमकाने का कार्य करती है। राडार इसका अच्छा उदाहरण है, जो अपने हस्तांतरित करने वाले एंटीना से सूक्ष्मतरंगों को लक्ष्य को चमकाने के लिए संचारित करता है तथा उसके उपरांत गृहीता एंटीना द्वारा परिलक्षित राडार प्राप्त करता है।

निष्क्रिय सुदूर संवेदन तकनीक लक्ष्य चमकाने के लिए एक बाहरी स्रोत पर निर्भर होती है जैसे कि, दृश्य प्रकाश। इस सुदूर संवेदन प्रणाली में बाहरी प्राकृतिक स्रोत (सूरज) द्वारा लक्ष्य चमकाया जाता है और लक्ष्य से परिलक्षित प्रकाश संवेदक द्वारा ग्रहण किया जाता है।

भौगोलिक सूचना प्रणाली

भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) एक ऐसी तकनीक है, जो हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर से बना है, जो भौगोलिक रूप से संदर्भित जानकारी को कैप्चर करने, भंडारण, विश्लेषण और प्रदर्शित करने में सक्षम है। यह तकनीक मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों के साथ स्थानीय

[1]वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [3]प्रधान वैज्ञानिक

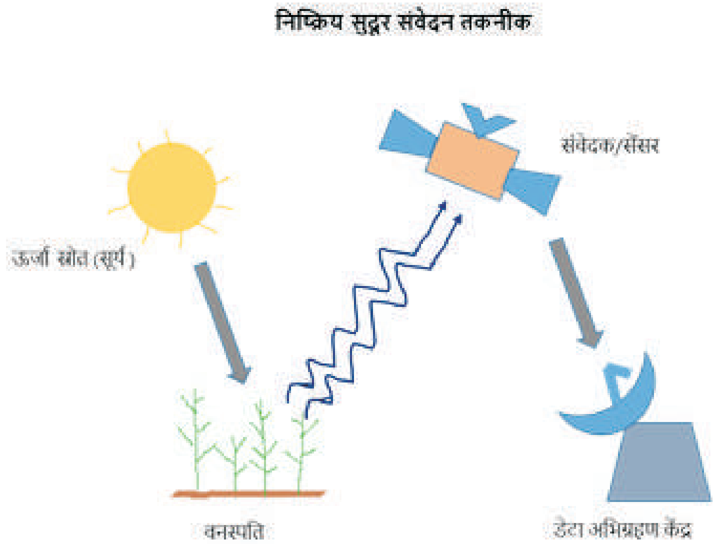

आंकड़ों के बारे में जानकारी देती है, तथा मानचित्रों और रेखाचित्रों के माध्यम से जानकारी का विश्लेषण कर रिपोर्ट करने में सक्षम है। भौगोलिक सूचना प्रणाली कृषि वैज्ञानिकों के लिए एक शक्तिशाली साधन है, जिसके द्वारा कृषि विकास के लिए विभिन्न अनुसंधान कार्यकलाप तथा योजना को लागू करने के लिए बेहतर निर्णय लेने में मदद करता है। इसके प्रमुख घटक नीचे दिए गए हैं–

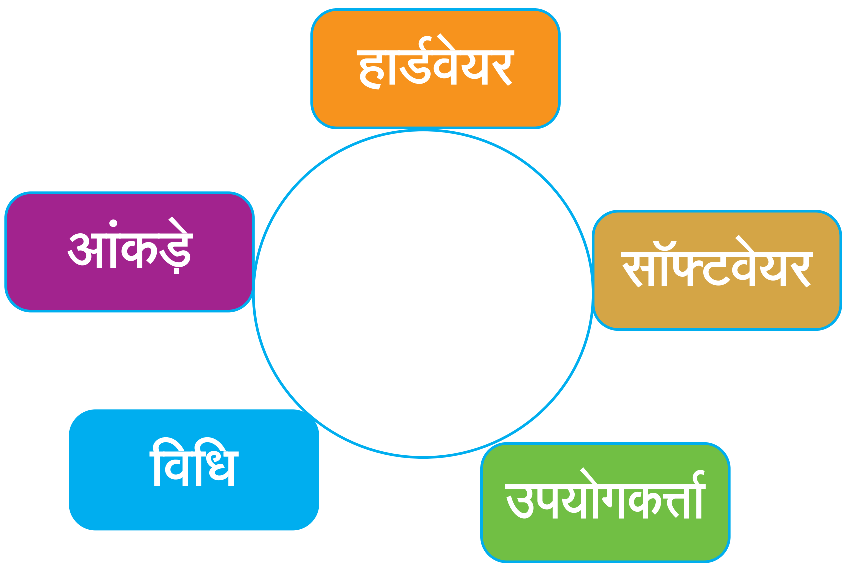

सुदूर संवेदन तकनीक एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

उपग्रहों के पास विशेष क्षेत्र अथवा भूभाग की छवि का नियमित रूप से पुनः मुआयना करने की क्षमता होती है। इनसे प्राप्त होने वाली जानकारी का निम्नलिखित प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन क्षेत्रों में उपयोग किया जा सकता है :

कृषि एवं मृदा

वनस्पति क्षेत्र

- फसल प्रकार वर्गीकरण में
- फसल क्षेत्रफल के आँकलन में
- फसल स्थिति मूल्याँकन में व तनाव का पता लगाने में

- फसल उपज पूर्वानुमान में
- कीटों और रोगों के प्रकोप की पहचान में
- फसल में पोषक तत्त्वों की कमी की जाँच में
- फसल अवशेष प्रबंधन में
- फसल बीमा में
- कृषि अकाल मूल्याँकन में
- बागवानी फसल के मूल्याँकन में

मृदा क्षेत्र

- मृदा के गुणों के मानचित्रण में
- मृदा प्रकार के मानचित्रण में
- मृदा अपरदन के अध्ययन में
- समस्याग्रस्त मृदा की पहचान में
- मृदा नमी के अध्ययन में
- मृदा प्रबंधन प्रणाली के अध्ययन में
- राष्ट्रीय बंजर–भूमि मानचित्रण में

जैव संसाधन अध्ययन

- वन आवरण तथा वन प्रकार के मानचित्रण में
- जैव विविधता मानचित्रण में
- हिम एवं हिमनद अध्ययन में

भू-विज्ञान एवं खनिज संसाधन

- भूमि के उपयोग और भूमि आवरण के परिवर्तन के अध्ययन में
- भूरूप मानचित्रण में
- भू–स्खलन के खतरे वाले क्षेत्रों के सीमांकन में
- खनिज तेल की खोज एवं खनन क्षेत्र अध्ययन में
- भूकंप–विर्वतनिक अध्ययन में

जल संसाधन

- भूजल विभव क्षेत्र मानचित्रण में
- सिंचाई के समय निर्धारण में
- सिंचाई संबंधित बुनियादी संरचनाओं के मूल्याँकन में
- जल संसाधन सूचना प्रणाली में
- जलाशय क्षमता मूल्याँकन में
- जलविद्युत परियोजनाओं के लिए उपयुक्त स्थान के चयन में

जलवायु एवं जलवायु परिवर्तन अध्ययन

- वायु प्रदूषकों पर शोध में
- मौसम का पूर्वानुमान करके फसल को नुकसान से बचाने में
- मीथेन उत्सर्जन और इसके नकारात्मक प्रभाव में
- बाढ़ क्षेत्र मानचित्रण में
- सूखा प्रवण क्षेत्र मानचित्रण में
- हिमनदों का पिघलना एवं उनके अध्ययन में

सुदूर संवेदन तकनीक एवं भौगोलिक सूचना प्रणाली के फायदे

- बहुत बड़े क्षेत्रफल का कम समय में आकलन
- अगम्य दूरस्थ तथा दुर्गम क्षेत्र का मानचित्रण एवम् मूल्याँकन
- किसी भी क्षेत्र का समय की एक निरंतर अवधि के साथ जानकारी प्राप्त करना
- अलग–अलग पैमाने पर और स्थिरता पर आसानी से डाटा अधिग्रहण
- जानकारी का आसानी से और तेजी से संग्रह
- मानचित्रों और रेखाचित्रों के माध्यम से जानकारी का विश्लेषण

सुदूर संवेदन तकनीक एवं भौगोलिक सूचना प्रणाली की सीमाएँ

- छोटे से क्षेत्र के लिए महँगा है (विशेष रूप से एक समय के विश्लेषण के लिए
- अवलोकन में अनिश्चितता
- भूमि के सर्वेक्षण के आंकड़ों के साथ क्रॉस सत्यापन
- छवि में विकृति
- विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता

डिजिटल भारत वेब पर मृदा जानकारी प्रणाली

राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर ने राष्ट्रीय जीओ–इन्फार्मेटिक्स केंद्र (https://ncog.gov.in/SIS/login) के सौजन्य से मृदा

संसाधनों की सूचनायें देशभर के लोगों के लिए उपलब्ध करवायी हैं। इसमें मृदा संसाधनों के मानचित्र जैसे कि मृदा गहराई, मृदा कणाकार, मृदा प्रकार, मृदा के रासायनिक और भौतिक गुणधर्म, मृदा उर्वरता, मृदा कार्बन, मृदा पी.एच., मृदा लवणीयता और क्षारीयता, मृदा अम्लीयता इत्यादि के साथ–साथ मृदा किस पैतृक पदार्थ से बनी हैं व पौधों के विकास और बढ़वार के लिए कौन से पोषक तत्व की कितनी आवश्यकता हैं, ये जानकारी भी किसान ले सकते हैं। इन आंकड़ों के माध्यम से राज्य के क्षेत्रीय कृषि विशेषज्ञ और प्रशासनिक अधिकारी जिले और तहसील स्तर पर मृदा संसाधनों का सुनियोजित प्रबंधन कर सकते हैं। ब्यूरो ने 1:10,000 पैमाने पर मृदा वर्गीकरण किया हैं, ये जानकारी सीधी डिजिटल इंडिया की वेबसाइट से त्वरित प्राप्त की जा सकती है। इसके आलावा ये जानकारी संस्थान की वेबसाइट (https://nbsslup.icar.gov.in/) पर उपलब्ध लिंक BHOOMI जिओपोर्टल (http://www.bhoomi geoportal-nbsslup.in/) से भी प्राप्त की जा सकती है। इस जानकारी से भारतवर्ष के 12 करोड़ से भी ज्यादा किसान लाभान्वित हो रहे हैं।

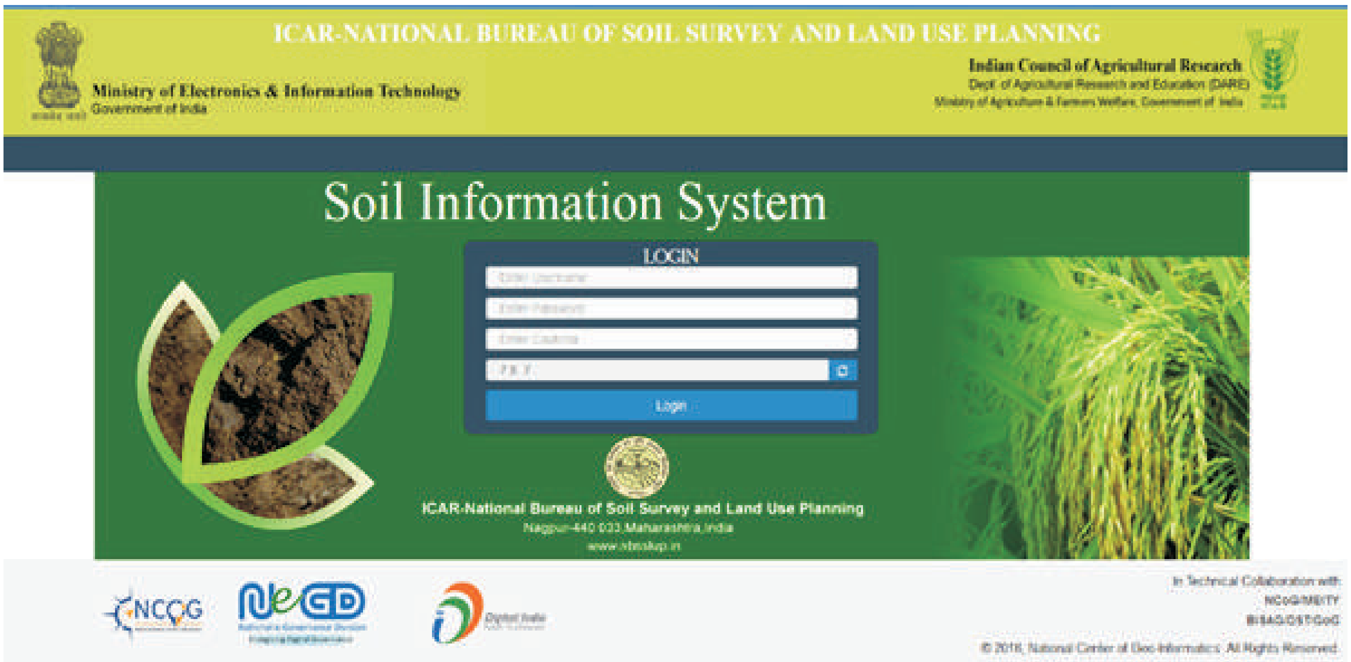

★ ★ ★

जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में लद्दाख में गहराता जल संकट

राजेश कुमार गोयल[1], महेश कुमार गौड़[1] एवं महेश्वर सिंह कंवर[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, लेह

लद्दाख हिमालय के वृष्टि छाया भाग पर स्थित है, जहाँ शुष्क मानसूनी हवाएँ मैदानी इलाकों और हिमालय पर्वत से नमी छीनने के बाद लेह तक पहुँचती हैं। लद्दाख आर्कटिक और रेगिस्तानी जलवायु दोनों की स्थिति को जोड़ता है। इसलिए लद्दाख को प्रायः ठंडा रेगिस्तान कहा जाता है। लद्दाख में वर्षा बहुत कम (10 से.मी.) व मुख्यतः हिमपात के रूप में होती है। लद्दाख में लगभग 90 प्रतिशत किसान बर्फ पिघलने और हिमानी पानी पर निर्भर हैं। बुआई अप्रैल से मई तक होती है और यदि बुआई के समय पर पर्याप्त जल नहीं मिले तो इसका फसल के विकास और उपज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। इनके अलावा वर्तमान में जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य अनियमित वर्षा का संकेत देते हैं। हाल के वर्षों में बर्फ की मात्रा 3 फीट से घटकर 3 इंच रह गई है। उच्च ऊँचाई पर स्थितः ग्लेशियर पीछे की ओर खिसक रहे हैं, जिसके कारण यह जून के मध्य के आसपास पिघलना शुरू हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, अप्रैल और जुलाई के महीनों के बीच जल की कमी हो जाती है जो कृषि को बुरी तरह प्रभावित करती है। कम हिमपात व बढ़ते जल संकट ने लद्दाख के कई गाँवों को नई आजीविका की तलाश के लिए मजबूर कर दिया है ।

ठंडे शुष्क क्षेत्र की समस्याओं के समाधान के लिए वर्ष 2012 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा जोधपुर स्थित केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान का एक क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, लेह में स्थापित किया गया था। अपनी स्थापना के बाद से, क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र–लेह स्थानीय कृषि उपज प्रसंस्करण, पारंपरिक कृषि–वानिकी प्रणाली, भूमि और जल संसाधन प्रबंधन, कृषि में स्वदेशी ज्ञान का दस्तावेजीकरण और बेहतर जल प्रबंधन पर काम कर रहा है। स्थात्र ने जनजातीय समुदाय के कल्याण के लिए टीएसपी के तहत सराहनीय कार्य किया है।

लेह के वर्तमान जल संकट के मुख्य कारण लद्दाख में तेजी से हुये पर्यटन के विकास से होटल, गेस्टहाउस और सड़कों के निर्माण सहित ढाँचागत विकास हैं। पर्यटन के अप्रतिबंधित प्रवाह ने स्थानीय पारिस्थितिकी पर बहुत ज्यादा दबाव डाला है। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार, 1974 में जब लद्दाख को पहली बार पर्यटन के लिए खोला गया था, तब कुल घरेलू व विदेशी 527 पर्यटक थे। अब लगभग 50 साल बाद, पर्यटकों की संख्या 4.5 लाख हो गई है। बढ़ते हुए पर्यटन से जहाँ पानी की माँग बढ़ी है, वहीं अपशिष्ट उत्पादन, विशेषकर प्लास्टिक की बोतलें भी तेजी से बढ़ी हैं। होटल और रेस्तरां के निर्माण में तेजी से हुई वृद्धि से क्षेत्र का प्राकृतिक परिदृश्य कम हो रहा है। पश्चिमी मानकों के अनुसार पर्यटक सुविधाओं के लिए बहुत अधिक जल संसाधनों की आवश्यकता होती हैं, जो आमतौर पर स्थानीय समुदाय की आवश्यकता से कहीं अधिक हैं। एक औसत लद्दाखी प्रतिदिन 20 लीटर जल का उपयोग करता है जबकि पर्यटक कम से कम 75 लीटर पानी का उपयोग करता है। अतः एक जिम्मेदार पर्यटन को बढ़ावा देना समय की माँग है।

लेह शहर की जल की वर्तमान माँग विभिन्न मानकों के अनुसार 6 से 8 एम.एल.डी. प्रति दिन है, जबकि वर्तमान जल आपूर्ति लगभग 4.5 एम.एल.डी. है। माँग में कमी की पूर्ति निजी ट्यूबवेलों से की जाती है। भूजल के

[1]प्रधान वैज्ञानिक

अंधाधुंध दोहन ने क्षेत्र के भूजल भंडार पर भारी दबाव डाला है। पुनर्भरण के अभाव में, जल की गुणवत्ता में गिरावट के साथ कई स्थानों पर भूजल स्तर में गिरावट आई है। जुलाई–अगस्त के महीनों में ग्लेशियर से पिघला हुआ अतिरिक्त जल उपलब्ध होने पर भूजल को रिचार्ज करने की तत्काल आवश्यकता है।

लेह शहर प्रतिदिन लगभग 8 एम.एल.डी. अपशिष्ट जल उत्पन्न करता है और वर्तमान जल उपचार क्षमता केवल 3 एम.एल.डी. है। वर्तमान में 5 प्रतिशत से भी कम घर केंद्रीय सीवेज लाइनों से जुड़े हैं। शहर के अपशिष्ट जल के उपचार और उपयोग के लिए बुनियादी ढाँचे को विकसित करने और पूरे शहर की सीवेज प्रणाली को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

जलवायु परिवर्तन ने लद्दाख की स्थानीय पारिस्थितिकी व वनस्पति को प्रभावित किया है। बढ़ता तापमान संभावित रूप से वनों की कटाई और भूमि–उपयोग में बदलाव में योगदान दे सकता है। जलवायु परिवर्तन और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन चिंता के प्रमुख विषय हैं। ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का लगभग 50 प्रतिशत परिवहन क्षेत्र से होता है। लद्दाख में पर्यटन उद्योग में वृद्धि के साथ, लेह शहर में अधिक कुशल सार्वजनिक परिवहन प्रणाली विकसित करने की तत्काल आवश्यकता है। इलेक्ट्रिक बसें शुरू करने की लद्दाख प्रशासन की हालिया पहल इस दिशा में एक स्वागत योग्य कदम है।

ऐतिहासिक रूप से, लद्दाख जौ और गेहूँ की खेती जैसी पारंपरिक कृषि पद्धतियों पर निर्भर रहा है। हालाँकि, बढ़ती जनसंख्या और बदलती आहार संबंधी प्राथमिकताओं के कारण कृषि भूमि का विस्तार हुआ है, जिसमें अक्सर जंगलों या प्राकृतिक वनस्पति को साफ करना शामिल होता है। वनों की कटाई और भूमि–उपयोग में बदलाव के कारण मृदा का क्षरण हुआ है। इसके अलावा, चराई स्थानीय अर्थव्यवस्था का एक अनिवार्य हिस्सा है, लेकिन अत्यधिक चराई से मृदा का क्षरण होता है, जो भूमि–उपयोग परिवर्तन में योगदान देता है। वनस्पति और मृदा पर पशुधन का दबाव पारिस्थितिकी तंत्र के लिए हानिकारक हो सकता है। इस प्रकार, मृदा का कटाव क्षेत्र में कृषि उत्पादकता और अंततः जल की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

व्यवसाय के लिहाज से, किसान लद्दाखी आबादी का लगभग 80 प्रतिशत हिस्सा हैं और कृषि क्षेत्र जल का एक प्रमुख उपयोगकर्ता है। लद्दाख में जल की कमी वसंत ऋतु में सबसे ज्यादा होती है, जब किसानों को अपने खेतों में बुआई करनी होती है। ऊँचे पहाड़ों पर, जहाँ अधिकांश ग्लेशियर स्थित हैं, कम तापमान के कारण, पिघले हुए ग्लेशियर का जल बुआई के समय उपलब्ध नहीं होता है और किसानों को अपने खेतों में बुआई शुरू करने के लिए लंबा इंतजार करना पड़ता है और परिणामस्वरूप फसल उगाने की अवधि और उपज कम हो जाती है। जल की

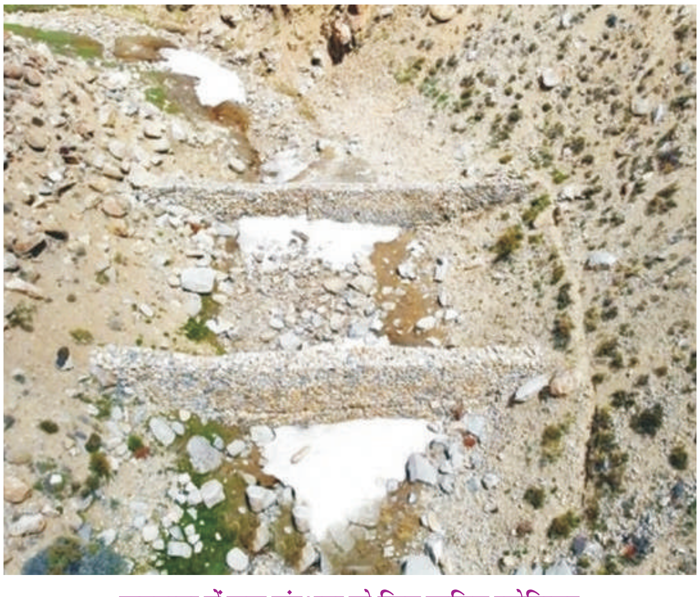

लद्दाख में जल संरक्षण के लिए कृत्रिम ग्लेशियर

किसी भी कमी से अर्थव्यवस्था और शहरी क्षेत्रों में आबादी के अस्तित्व पर गंभीर असर पड़ेगा।

पहाड़ी क्षेत्र में आसन्न जल संकट से निपटने के लिए मृदा के कटाव को कम करने और भूमि उपयोग का प्रबंधन करने के लिए पारंपरिक भूमि प्रबंधन विधियों का ऐतिहासिक रूप से लद्दाख में उपयोग किया जाता रहा है। हालाँकि, बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण इन प्रणालियों को चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। आज जल प्रबंधन के लिए दीर्घकालिक कार्य योजना को अपनाने की आवश्यकता है:

- कुहल सतही चैनल हैं, जो प्राकृतिक रूप से बहने वाली जलधाराओं से पानी को सिंचाई के लिए मोड़ते हैं। लद्दाख में कुहल कच्ची नालियाँ होती हैं और इनमें बहुत अधिक जल रिसाव होता है। कुछ स्थानों पर रिसाव के कारण कुहल के नीचे का क्षेत्र हरा–भरा हो जाता है। ऐसे मामलों में कुहल में प्लास्टिक शीट के प्रयोग से जल रिसाव को काफी कम किया जा सकता है।
- ऊँचाई वाले क्षेत्रों से सिंचाई का जल ले जाने वाले सिंचाई चैनलों को उचित रूप से बनाए रखने की आवश्यकता है और यदि आवश्यक हो तो उन्हें ठीक से सीमेंट किया जाना चाहिए ताकि पानी को अधिक दूरी तक पहुँचाया जा सके। चैनलों के किनारे, उपयुक्त स्थानों पर छोटे तालाबों का निर्माण किया जा सकता है ताकि इन तालाबों में जल संग्रहित किया जा सके, जो कम गहराई पर मौजूद छतों के लिए पुनर्भरण संरचनाओं के रूप में भी कार्य कर सकता है।
- पहाड़ी इलाकों में झरने और बारहमासी नाले जल के प्रमुख स्रोत हैं। डिस्चार्ज और गुणवत्ता दोनों के लिए इन झरनों की निगरानी नियमित रूप से की जानी चाहिए। इन झरनों को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर विकसित करने की जरूरत है और इनके स्रोतों को संरक्षित करने की जरूरत है।
- झरनों जैसे पारंपरिक संसाधनों को विभिन्न उपयोग के लिए वैज्ञानिक आधार पर पुनर्जीवित, विकसित और संरक्षित करने की आवश्यकता है। सभी झरनों की गणना और सूची ठीक से बनाई जानी चाहिए और आंकड़ों को ठीक से बनाए रखा जाना चाहिए। ऐसे झरनों के बहाव को अनुकूल स्थानों पर डाउनस्ट्रीम में नालों/सहायक नदियों पर छोटे चेक बाँधों या उपसतह बाँधों के निर्माण द्वारा बनाए रखा जा सकता है।
- भूजल पुनर्भरण के लिए छोटे तालाबों/टैंकों का उपयोग किया जा सकता है। इन संरचनाओं का निर्माण जल संचयन के लिए किया जा सकता है और इसका उपयोग पुनर्भरण और घरेलू जरूरतों को पूरा करने दोनों के लिए किया जा सकता है।
- जहाँ भी स्थलाकृति बिना मौसम जल संग्रहित करने और फसल के मौसम के दौरान आपूर्ति करने की अनुमति देती है, वहाँ कृत्रिम ग्लेशियरों का निर्माण किया जा सकता है।

चित्र 2. ग्लेशियर के अतिरिक्त जल के भंडारण के लिये जिंग

चित्र 3. पॉली-सुरंगों द्वारा वर्ष भर सब्जियों का उत्पादन व जल का सदुपयोग

- लद्दाख में, मौसम फसल की वृद्धि और उत्पादन पर गंभीर प्रतिबंध लगाता है। पॉली–हाउस फसलों को कठोर जलवायु से बचाते हैं और अनुकूल सूक्ष्म–जलवायु बनाते हैं। पॉली–हाउस पूरे वर्ष फसल उगाने में सक्षम बनाता है। साथ ही, उपज की गुणवत्ता खुले खेत में खेती की तुलना में बेहतर होती है। खुले खेत में फसल की खेती की तुलना में पॉली–हाउस खेती के द्वारा उपज 4 से 8 गुना के स्तर तक प्राप्त की जा सकती है।
- क्यागचू/खाइचू जल संरक्षण की एक स्थानीय विधि है। इस प्रणाली में फसल की कटाई के बाद सितम्बर/अक्टूबर माह में सिंचाई की जाती है। सर्दियों के मौसम में जल मृदा में जमा रहता है और बाद में उसी जल का उपयोग अप्रैल के महीने में नई फसल की बुआई के लिए किया जाता है, जब ग्लेशियर का जल उपलब्ध नहीं होता है।
- "जिंग" जल संचयन की एक संरचना हैं, जिसका निर्माण ग्लेशियर के अतिरिक्त जल के भंडारण के लिए किया जाता है। स्थानीय भाषा में इसे 'जिंग' के रूप में जाना जाता है। संग्रहित जल का उपयोग मुख्य रूप से सिंचाई के लिए किया जाता है। भंडारण जिंग का आकार पहाड़ियों से उपलब्ध ग्लेशियर के जल की मात्रा पर निर्भर करता है।
- निम्न पॉली–सुरंगें ग्रीनहाउस का छोटा रूप हैं। निम्न पॉली–सुरंगें फसलों को हवा, पाले और प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों से बचाती हैं। निम्न पॉली–सुरंगें फसलों के बढ़वार के मौसम को बढ़ाने में सक्षम बनाती है और उन फसलों को भी उगाने का अवसर प्रदान करती है जो आमतौर पर बाहर नहीं उगती हैं।
- ट्रेंच ग्रीनहाउस का उपयोग फसलों को गंभीर ठंड और गर्म मौसम के प्रभाव से आंशिक रूप से बचाने के लिए किया जा सकता है। एक खाई में 0.5 मीटर की गहराई के साथ उपयुक्त आकार (3 मीटर X 2 मीटर) के भूमिगत कक्ष होते हैं। चैम्बर को पॉलिथीन फिल्म से ढक दिया गया है। इस संरचना के निर्माण में अधिक कौशल की आवश्यकता नहीं होती है और यह संरक्षित खेती के सभी प्रकारों में सबसे सस्ता है।

विभिन्न एजेंसियों ने जल प्रबंधन में सुधार, वर्षा जल संचयन को बढ़ावा देने और स्थानीय आबादी को स्थायी जल उपयोग के बारे में शिक्षित करने के लिए विभिन्न परियोजनाएँ शुरू की हैं। इसके अतिरिक्त, नीति निर्माताओं को जल संसाधनों पर पर्यटन और शहरी विकास के प्रभाव पर विचार करने और सतत् विकास सुनिश्चित करने के लिए नियमों को लागू करने की आवश्यकता है। यह पूरे लद्दाख क्षेत्र के लिए एक आह्वान है कि विनियमित गुणवत्ता वाले पर्यटन के साथ एकीकृत तरीके से बढ़ते जल संकट को हल किया जाए और लद्दाख की समृद्ध विरासत को बनाए रखने के लिए स्थानीय स्वदेशी ज्ञान को बढ़ावा दिया जाए।

★ ★ ★

बहुउपयोगी करोंदा

पी.आर. मेघवाल[1], अकथ सिंह[1] एवं प्रदीप कुमार[2]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

करोंदा एक कांटेदार झाड़ी वाला पौधा है। इसको अधिकतर खेतों की बाड़ पर लगाया जाता है। पूर्ण विकसित अवस्था में इसके पौधे घनी कांटेदार झाड़ी का रुप ले लेते हैं, जिससे यह पौष्टिक फल उत्पादन के साथ–साथ एक रक्षक–जीवित बाड़ का काम करती है। करोंदा की बाड़ बगीचे में लगे अन्य पौधों के लिए अनुकूल सूक्ष्म वातावरण पैदा करती है, साथ ही वायु तथा जल द्वारा होने वाले भू–क्षरण को रोकने मे भी सहायक होती है। करोंदा के फल पेक्टिन, ऊर्जा (कार्बोहाइड्रेट) तथा खनिज लवणों से युक्त होते हैं। करोंदा के फलों से चटनी, टार्ट, पुडिंग, सब्जी, स्क्वेश, सीरप, जैली आदि बनाई जा सकती है। विशेषकर हरी मिर्च के साथ इसकी चटनी बहुत स्वादिष्ट बनती है।

भूमि एवं जलवायु

करोंदा सूखा रोधी झाड़ी हैं। यह उष्ण व उपोष्ण जलवायु में अच्छा पनपता है। शुष्क क्षेत्रों में भी आंशिक सिंचाई देकर इसको लगाया जा सकता है। इसे सभी तरह की भूमियों मे सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, यहाँ तक कि ऐसी मृदा जिसका पीएच मान 10.0 होने पर भी इसे लगा सकते हैं। रोपाई के बाद एक बार स्थापित हो जाने पर इसको विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

किस्में

करोंदा मुख्यतया दो तरह का होता है। दोनों के पौधे एक जैसे ही दिखाई देते हैं। लेकिन फलों के छिलके के रंग में अन्तर होता है। पहले प्रकार के फलों का छिलका श्वेत पृष्ठ भूमि पर गुलाबी आभा लिए होते हैं, जबकि दूसरे प्रकार में फल गहरी हरी पृष्ठ भूमि पर हल्की भूरी या बैंगनी आभा लिए हुए होते हैं। पन्त कृषि विश्वविद्यालय द्वारा करोंदा की तीन किस्में विकसित की गई हैं, पन्त मनोहर, पन्त सुदर्शन तथा पन्त सुवर्णा।

काजरी, जोधपुर में भी विगत 15 वर्षों से करोंदा के जीव द्रव्य एकत्र करने तथा उसमें से उन्नत किस्मों का

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक

चयन प्रक्रिया द्वारा विकास पर कार्य किया गया, जिसके फलस्वरुप तीन उन्नत अधिक उपज देने वाली किस्मों को विकसित किया गया है–सीजेडके–2011, सीजेडके–2022, व सीजेडके–2031। इनमें दो किस्में पहले प्रकार की हैं तथा तीसरी किस्म दूसरे प्रकार की हैं। करोंदा की प्रमुख उन्नत किस्मों का विवरण निम्न प्रकार है–

मरू गौरव: इस किस्म के पौधे फैलने वाले तथा ढाई से तीन मीटर ऊँचाई तक जाते हैं। फलों का रंग गहरी हरी पृष्ठभूमि में गहरी भूरी आभा लिए हुए होते हैं। फलों का आकार 2.18 से.मी. x 1.63 से.मी. तथा औसत वजन 3.74 ग्राम प्रति फल होता है। एक फल में 6.13 प्रतिशत बीज, गूदा 88.27 प्रतिशत, शुष्क पदार्थ 12.85 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 9.4 प्रतिशत, विटामिन सी 35.88 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम, खटास 2.82 प्रतिशत व इस किस्म में फूल मार्च–अप्रैल में आते हैं, जबकि फल अगस्त–सितम्बर में पकते हैं। यह अधिक उपज देने वाली किस्म है, जिसका उत्पादन लगभग 35 कि.ग्रा. प्रति पौधा हो जाता है।

पन्त मनोहर: यह पन्त कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित करोंदा की उन्नत किस्म है। इसके पौधे मध्यम आकार के, घने व फल एक तरफ से गुलाबी लाल व दूसरी तरफ से सफेद रंग के होते हैं। औसत फल भार–3.49 ग्राम, खाने योग्य भाग 88.27 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस 3.92 प्रतिशत व उपज 27 कि.ग्रा. प्रति पौधा होती है।

पन्त सुवर्णा: यह भी पन्त कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित करोंदा की उन्नत किस्म हैं। इसके पौधे सीधे बढने वाले व कम घने व फल एक तरफ से गहरे भूरे व दूसरी तरफ से हल्के हरे रंग के होते हैं। औसत फल भार–3.62 ग्राम, खाने योग्य भाग 88.27 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस 3.83 प्रतिशत व उपज 22 कि.ग्रा. प्रति पौधा होती है।

थार कमल: यह किस्म केन्द्रीय शुष्क बागवानी अनुसंधान संस्थान, बीकानेर के गोधरा केन्द्र द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के पौधे बौने व फैलने वाले होते हैं। इसमें मार्च माह में फूल आते हैं और फल जून में पक जाते हैं। औसत फल भार–4.97 ग्राम, खाने योग्य भाग 93.66 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस 9.54 प्रतिशत, अम्लता 0.64 प्रतिशत व उपज 13 कि.ग्रा. प्रति पौधा होती है।

प्रवर्धन

करोंदा का प्रवर्धन बीज द्वारा आसानी से किया जा सकता है। अधिकतर इसमें फलन स्वपरागण द्वारा होने के कारण इसके बीज पौधों में मातृ पौधे के अधिकतर गुण आ जाते हैं। प्रवर्धन के वानस्पतिक तरीके जैसे कलम, ऊतक संवर्धन तथा गूंटी द्वारा भी यह कार्य सम्भव है, लेकिन बीज विधि ज्यादा आसान, अधिक सफल व कम खर्चीली होने के कारण व्यापारिक स्तर पर इसी विधि द्वारा ही इसे प्रवर्धित किया जाता है।

पौधों की रोपाई

करोंदा के लगभग एक वर्ष की आयु के पौधों को रोपाई मे प्रयुक्त किया जाना चाहिए। जीवित रक्षक बाड़ लगाने के लिए पौधों को 2 फीट की दूरी पर 1 घन फुट आकार के गड्ढों में मृदा व अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद (1 : 3 अनुपात) को मिलाकर भरने के बाद लगाना चाहिए।

करोंदा का बगीचा लगाने के लिए 2 फीट x 2 फीट x 2 फीट आकार के गड्ढों की 4 से 5 मीटर की दूरी पर खुदाई करें। पौधे लगाने का सर्वोत्तम समय जुलाई–अगस्त होता है। हालांकि सींचित क्षेत्रों में पौधे मार्च माह मे भी लगाए जा सकते हैं।

खाद व उर्वरक

करोंदा में देशी खाद ही पर्याप्त रहती है, हालांकि बाड़ लगाते समय 100 ग्राम यूरिया प्रति पौधा देने से पौधे तेजी से बढते हैं और बाड़ जल्दी तैयार होती है। एक वर्ष के पौधों को 2 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 20 ग्राम नत्रजन, 10 ग्राम फास्फोरस व 10 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। और इसे हर वर्ष इसी अनुपात में उर्वरक 10 साल की आयु तक देते रहना चाहिये। इस हिसाब से एक पूर्ण विकसित पौधे में 20 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 200 ग्राम नत्रजन, 100 ग्राम फास्फोरस व 100 ग्राम पोटाश प्रतिवर्ष देना चाहिये। गोबर की खाद, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा जुलाई तथा शेष बची नत्रजन को अगस्त–सितम्बर में देनी चाहिए।

कटाई-छँटाई

बाड़ के रुप में लगे पौधों को हेज की तरह आगे व पीछे की तरफ से काटते हैं, जबकि पौधों की बीच मे कंटिग नहीं करते हैं, ताकि इनकी शाखायें आपस में मिलकर घनी बाड़ का रुप ले सके। बगीचे के रुप में लगे पौधों में नीचे से निकलने वाली शाखाओं व सकर्स को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए। पूर्ण विकसित पौधों की घनी शाखाओं की भी कभी–कभी छँटनी करनी चाहिये ताकि पौधों के मध्य भाग तक हवा तथा प्रकाश का प्रवेश हो सके, साथ ही रोग–ग्रस्त व सूखी टहनियों को भी हटाते रहना चाहिये।

सिंचाई

करोंदा के पौधे एक बार लगने के पश्चात् असानी से नहीं मरते, लेकिन नियमित फल लेने के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है, चूंकि इसमें मार्च–अप्रैल में फूल आते हैं तथा गर्मियों में फल पेड़ों पर लगे होते हैं, इसलिए गर्मियों में 10 से 12 दिन के अन्तराल पर लगभग 200 लीटर जल प्रति पौधा देना चाहिये। वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता लगभग नहीं के बराबर रहती है। फिर भी वर्षा का लम्बा अन्तराल होने पर सिंचाई कर सकते हैं। फल लगे पौधों में जल की कमी का संकेत सर्वप्रथम फलों पर पड़ता है, जो कि उस स्थिति में मुर्झाने लगते हैं। इसलिए फल लगे पौधों कि समय पर सिंचाई अवश्य करें।

कीट व रोग

शुष्क जलवायु में करोंदा में रोग व कीटों का अधिक प्रकोप नहीं पाया जाता है। हालांकि, अन्य क्षेत्रों में प्रारंभिक अवस्था में पत्ती खाने वाली गिडार नई पत्तियों को खा जाती है, जिससे पेड़ की बढ़वार रूक जाती है। इसकी रोकथाम के लिए नुवाक्रोन 2 मि.ली. प्रति लीटर जल में घोल बनाकर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त श्याम वर्ण रोग पत्तों व फलों को प्रभावित करता है। रोग–ग्रस्त पत्तों पर अनियमित आकार के भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो बाद में गहरे भूरे रंग में बदल जाते हैं, रोगी पत्तियाँ गिर जाती हैं और पतली टहनियाँ सूखना प्रारंभ कर देती हैं। साथ ही फलों व तनों पर भी इस रोग के घाव बन जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 2 ग्राम ब्लाइटाक्स–50 या फाइटालोन की इतनी ही मात्रा को एक लीटर जल में घोल बनाकर छिड़काव करें। तने के घावों को खुरच कर उन पर ब्लाइटाक्स–50 व अलसी के तेल को 1:3 के अनुपात में लेप बनाकर लगायें।

फलों की तुड़ाई व उपज

करोंदा में फूल दो ऋतुओं यथा मार्च–अप्रैल तथा अक्टूबर–नवम्बर में आते हैं। मार्च – अप्रैल वाली ऋतु मुख्य होती है, जिनके फलों की तुड़ाई जुलाई–अगस्त में करते हैं। फलों को पूरी तरह पकने से पहले तोड़ने से ही वे अचार, चटनी या अन्य उपयोग के लिए उपयुक्त रहते हैं। पूर्णतः पके फल बीज के लिए काम में लेते हैं। औसत उपज लगभग 15 से 25 कि.ग्रा. प्रति पौधा होती है, परन्तु काजरी से विकसित मरू गौरव किस्म की उपज 50 कि.ग्रा. प्रति पौधा तक प्राप्त की गई है।

★ ★ ★

राजभाषा संबंधी गतिविधियाँ

नवीन कुमार यादव[1]
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

हिन्दी पखवाड़ा आयोजन 2023

भाकृअनुप– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन 18 सितम्बर से 4 अक्टूबर 2023 तक किया गया। दिनांक 18 सितम्बर 2023 को उद्घाटन समारोह की शुरुआत द्वीप प्रज्ज्वलन के साथ हुई। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. नचिकेत कोतवालीवाले, निदेशक, केन्द्रीय कटाई उपरांत अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान (सीफेट), लुधियाना का स्वागत संस्थान के कार्यकारी निदेशक डा. सुमंत व्यास द्वारा किया गया। डॉ. नचिकेत कोतवालीवाले ने कहा कि हिन्दी पूरे देश को एकता के सूत्र में पिरोने का सामर्थ्य रखने वाली भाषा है। संस्थान के उप निदेशक (राजभाषा), श्री नवीन कुमार यादव द्वारा स्वागत संबोधन दिया गया तथा इस अवसर पर माननीय केन्द्रीय गृहमंत्री जी तथा माननीय केन्द्रीय कृषि मंत्री जी के संदेशों का पाठन किया। मुख्य प्रशासनिक अधिकारी (वरि. ग्रेड), श्री सुरेश कुमार ने सभी कार्मिकों को राजभाषा प्रतिज्ञा की शपथ दिलाई।

दिनांक 4 अक्टूबर 2023 को भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर में हिंदी पखवाडा समापन समारोह का आयोजन किया गया। संस्थान के निदेशक, डॉ. ओम प्रकाश यादव द्वारा कार्यक्रम के मुख्य अतिथि, प्रो. (डॉ.) महिपाल सिंह राठौड़, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर का स्वागत किया गया। इस अवसर पर प्रोफेसर महिपाल सिंह राठौड़ ने कहा कि हिंदी आमजन की भाषा है। हमें हिंदी बोलने में गर्व का अनुभव करना चाहिये। यह हमारी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर की वाहक है।

इस अवसर पर संस्थान निदेशक डॉ. ओम प्रकाश यादव ने कहा कि हिंदी एक वैज्ञानिक भाषा है। संवैधानिक बाध्यता के साथ–साथ हमारा नैतिक दायित्व भी है कि हम हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करें। कार्यक्रम के दौरान कविता पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। श्री नवीन कुमार यादव, उप निदेशक (राजभाषा) द्वारा हिंदी गतिविधियों संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया तथा बताया गया कि हिन्दी पखवाड़ा के अंतर्गत अन्ताक्षरी प्रतियोगिता, हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन प्रतियोगिता, प्रश्न मंच प्रतियोगिता, कंप्यूटर पर यूनिकोड में हिन्दी टंकण प्रतियोगिता, आशु भाषण प्रतियोगिता, हिन्दी शोधपत्र प्रदर्शनी प्रतियोगिता, वाद विवाद प्रतियोगिता व स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिता सहित कुल आठ प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं। प्रत्येक प्रतियोगिता के लिए विजेताओं को प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं प्रोत्साहन राशि के रूप में क्रमशः 2000/–,1500/– व 1100/– रुपये प्रदान किये गए। पखवाड़े के दौरान आयोजित प्रतियोगिताओं में संस्थान के कार्मिकों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। इस अवसर पर संस्थान के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी (वरि. ग्रेड), श्री सुरेश कुमार ने कहा कि हिंदी में हम अपनी बात सरल और सहज रूप से व्यक्त कर सकते हैं। लेखा नियंत्रक, श्रीमती सुनीता आर्य ने सभी को हिंदी में अधिकाधिक कार्य करने की अपील की। कार्यक्रम का संचालन, डॉ. महेश कुमार ने किया। धन्यवाद ज्ञापन श्री नवीन कुमार यादव ने किया।

[1]उप निदेशक (राजभाषा)

राजभाषा कार्यशाला

1. दिनांक 21.03.2023 को ''राजभाषा हिन्दी और उसका कार्यान्वयन तथा तिमाही प्रगति रिपोर्ट'' विषय पर राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में श्री नवीन कुमार यादव, उप निदेशक (राजभाषा) द्वारा राजभाषा अधिनियम, राजभाषा नियम तथा राजभाषा हिन्दी संबंधी प्रावधानों की जानकारी दी गयी तथा तिमाही प्रगति रिपोर्ट भरने संबंधी जानकारी दी गयी। इस अवसर पर श्री सुरेश कुमार, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी (वरिष्ठ ग्रेड) एवं सुश्री सुनीता आर्य, लेखा नियंत्रक द्वारा प्रतिभागियों से अधिकाधिक कार्य हिन्दी में करने हेतु अपील की गयी।

2. दिनांक 05.07.2023 को ''कार्यालयी हिन्दी का स्वरूप'' विषय पर राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में श्री शिवचरण बैरवा, सदस्य सचिव, नराकास (कार्यालय), जोधपुर ने कार्यालयी हिन्दी पर चर्चा की। श्री सुरेश कुमार, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी (वरिष्ठ ग्रेड) ने कहा कि संस्थान में द्विभाषी प्रपत्रों के प्रयोग, ई–ऑफिस पर हिन्दी में टिप्पण तथा सभी पत्रों की पावती भेजकर हिन्दी कार्य को बढाया जा सकता है।

3. दिनांक 12.12..2023 को ''कार्यालयी हिन्दी का प्रयोग'' विषय पर राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में श्री नवीन कुमार यादव, उप निदेशक (राजभाषा) द्वारा सरल हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया गया। श्री यादव द्वारा वार्षिक कार्यक्रम में दिए गए लक्ष्यों के बारे में जानकारी दी गयी।

संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उप समिति द्वारा संस्थान का राजभाषा संबंधी निरीक्षण

संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उप समिति द्वारा दिनांक 27.02.2023 को भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर का राजभाषा निरीक्षण किया गया। निरीक्षण बैठक की अध्यक्षता संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उप समिति की संयोजक प्रो. रीता बहुगुणा जोशी ने की। बैठक में श्री मनोज तिवारी, माननीय संसद सदस्य तथा सुश्री संगीता यादव, माननीय संसद सदस्य ने भाग लिया। बैठक में डॉ. ओम प्रकाश यादव, निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, श्री सुरेश कुमार, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी (वरि. ग्रेड) तथा श्री नवीन कुमार यादव, उप निदेशक (रा भा) ने भाग लिया। बैठक में परिषद के प्रतिनिधि के रूप में डॉ. राजबीर सिंह, सहायक महानिदेशक (एएएफ एवं सीसी) तथा श्री रामदयाल शर्मा, उप निदेशक (रा भा) ने भाग लिया।

समिति द्वारा संस्थान के राजभाषा कार्यान्वयन की प्रशंसा की गई तथा आवश्यक निर्देश दिए गये। इस अवसर पर संस्थान निदेशक, डॉ. ओम प्रकाश यादव ने अंतर्राष्ट्रीय श्रीअन्न वर्ष के संबंध में संस्थान द्वारा आयोजित गतिविधियों की जानकारी दी तथा समिति को संस्थान द्वारा मिलेट से निर्मित खाद्य उत्पाद भेंट किये सम्माननीय संसद सदस्यों द्वारा इन उत्पादों की प्रशंसा की गयी।

संगोष्ठी

10 जनवरी 2023 को विश्व हिन्दी दिवस के अवसर पर संस्थान में राजभाषा संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी में डॉ. जे. रेणुका, संयुक्त निदेशक (राजभाषा) ने अतिथि वक्ता के रूप में भाग लिया। संगोष्ठी में संस्थान के क्षेत्रीय अनुसन्धान स्थात्रों के कार्मिकों सहित संस्थान के 50 से अधिक वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया।

पुरस्कार/सम्मान

1. नराकास जोधपुर–2 द्वारा वर्ष 2022–23 हेतु भाकृअनुप– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर को उत्कृष्ट राजभाषा कार्यान्वयन हेतु प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया।

2. दिनांक 23.5.2023 को नराकास जोधपुर–2 द्वारा आयोजित हिन्दी टिप्पण आलेखन एवं शब्दावली ज्ञान प्रतियोगिता में संस्थान के सहायक प्रशासनिक अधिकारी, श्री हेमाराम ने प्रथम स्थान एवं संस्थान के वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी, श्री इन्द्रराज मीणा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

3. दिनांक 21.11.2023 को नराकास जोधपुर–2 द्वारा आयोजित हिन्दीत्तर क्षेत्र के कार्मिकों हेतु हिन्दी टिप्पण आलेखन प्रतियोगिता में संस्थान की वैज्ञानिक, डॉ. सरिता एम. ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

क्षेत्रीय अनुसन्धान स्थात्र, लेह

भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, लेह में 22 सितंबर 2023 से 4 अक्टूबर 2023 तक उत्साह और उमंग के साथ हिंदी पखवाड़ा 2023 मनाया गया। इस कार्यक्रम में क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, लेह के अध्यक्ष डॉ. एम.एस. कंवर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। डॉ. महेश के. गौड़ एवं डॉ. आर.के. गोयल, डॉ. एम.बी. नूर मोहम्मद, इंजीनियर चांगचुक लामो, डॉ. ए.आर. चिचाघरे, डॉ. एम. राजशेखर उपस्थित रहे। आरआरएस, लेह में हिंदी पखवाड़ा 2023 के दौरान आशु भाषण, वैज्ञानिक शब्दावली प्रतियोगिता तथा हिन्दी निबंध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, भुज

क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, भुज में हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन दिनांक 14 से 29 सितम्बर 2023 तक किया गया। पखवाड़ा के अंतर्गत आयोजित गतिविधियों में स्थात्र के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। समापन समारोह में अध्यक्ष डॉ. मनीष कांवट ने प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रमाणपत्र एवं स्मृति चिन्ह प्रदान कर पुरस्कृत किया।

क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर

क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर में दिनांक 14 से 28 सितम्बर 2023 तक हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि के रूप में डा. ब्रज रतन जोशी, सह आचार्य, हिन्दी विभाग, डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर उपस्थित रहे व अध्यक्षता डा.नवरतन पंवार, अध्यक्ष, क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर ने की। पखवाड़े के दौरान गतिविधियों के बारे में डॉ. एन.एस. नाथावत ने जानकारी दी। पखवाड़े के दौरान प्रश्नोत्तरी, कविता पाठ, निबंध प्रतियोगिता, टिप्पण लेखन, आशु भाषण, वक्तृत्व कला प्रतियोगिता आयोजित की गयी। कार्यक्रम का संचालन डॉ. रविन्द्र सिंह शेखावत ने किया।

★ ★ ★

कविता

गाथा रेगिस्तान की

बिश्राम मीना 'सेवार्थी'[1]

आओ सुनाता हूँ मैं तुमको गाथा रेगिस्तान की।
शुष्क धरा विकसित करती काजरी संस्थान की ।।

कभी यहाँ था सुंदर उपवन, शीतल पवन महकती थी,
शुष्क धरा के इस आंगन में, माँ नदी सरस्वती बहती थी,
गेहूँ गन्ना चना मटर की, खेती लहलहाती थी
ग्वार बाजरा मूंग मोठ, मक्का भी खूब उपजती थी
गेंदा गुलाब और चमेली, बहुरंगी कलियां खिलती थी
भंवरा कोयल तोता मैना, बुलबुल यहाँ चहकती थी
पग-पग पर संगीत गूंजता, आभा इस गुलिस्तान की। आओ...

मगर नहीं मंजूर विधाता, क्रुद्ध हुए थे इतने क्यों
सलिल सरोवरी सरिता सरस्वती, खुद ही लगी सूखने क्यों
निर्झर झरने बहने वाले, स्वतः लगे थे रूकने क्यों
सब्ज हरा था चमन यहां का, उपवन लगे उजड़ने क्यों
समतल भूमि पर रेतीले, टीबे लगे उभर ने क्यों
जहां फूंकती कोयल, मैना कौवे लगे बोलने क्यों
काया कल्प एक दम बदली, खेत और खलिहान की। आओ ...

बंजर भूमि उजड़ा जंगल को, वापस विकसित करने,
पर्यावरण सुरक्षित करके, पशुधन में वृद्धि करने
प्राकृतिक आपदा और अकालों से छुटकारा दिलवाने
भूख प्यास से व्याकुल मानव को, फिर से समृद्ध करने
नींव पड़ी थी उन्नीस सौ उनसठ में, काजरी संस्थान की। आओ...

सुनो किसानों ध्यान लगाकर, काजरी ने बतलाया है
बाजरा सीजेडपी अट्ठानवें जीरो दो और सीजेडपी नौ सौ तेवीस बढ़िया है
मोठ काजरी एक काजरी दो, काजरी तीन काजरी चार
काजरी पांच काजरी छः और काजरी सात सभी बढिया
नाली चोखला नस्ल भेड़ की, बकरी जमनापारी है
थारपारकर गाय हमारी, सभी नस्लों से न्यारी है
तन मन धन से सेवा करती, काजरी किसान की। आओ....

[1]पूर्व सहायक प्रशासनिक अधिकारी, भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

जल मिट्टी की जांच करा कर, उन्नत फसल उगाना है,
खारी भूमि को जिप्सम से, उपजाऊ अधिकर बनाना है,
गोचर भूमि में उपजाऊ, धामण घास लगाना है
पशुचारा हेतु नेपियर, गिनीघास उगाना है
बेर काजरी गोला सेव मूंडिया, अलीगंज ईलायची उगाना है
कंचन कृष्णा किस्त आंवला, अनार जालोर बेदाना है,
व्याधि कीट नियन्त्रण कर, चूहों से फसल बचाना है
खाद डीएपी छोड़ यूरिया, जैविक खेती अपनाना है
बहु उद्देशीय शोध काजरी, मोहताज नहीं पहचान की ।...

पिण्ड खजूर शहद से मीठा, अंजीर ड्रैगन फूट उगाने को
बाजरे का मीठा बिस्कुट, कुरकुरा मन भन भाने को
बेलपत्र का मीठा शरबत, एलोवेरा डायबीटीज मिटाने को
सोलर कूकर सोलर ड्रायर, विद्युत व्यय बचाने को
काजरी की उन्नत तकनीकें, जरूरत बहुत किसान की ।...

काजरी के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, पाली बीकानेर में,
कुकमा भुज लद्दाख लेह में, पांचवा जैसलमेर में,
पाली में अध्यक्ष डॉ. अनिलकुमार शुक्ला साहब
बीकानेर में डॉ. एनआर पंवार साहब,
भुज में अध्यक्ष डॉ. मनीष कांवत,
जैसलमेर में डॉ. आरएस मेहता साहब,
केवीके पाली में अध्यक्ष डॉ. मनोज कुमार
केवीके जोधपुर में डॉ. बीएस राठोड साहब
सबके मुखिया काजरी निदेशक, डॉ. ओ.पी. यादव साहब
आपकी सेवा में समर्पित, कविता है विश्राम की ।...

आओ सुनाता हूँ मैं तुमको गाथा रेगिस्तान की।
शुष्क धरा विकसित करती काजरी संस्थान की ।।

कविता

बाजरा

कुसुम लता[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

मरूधर की पहचान बाजरा, पश्चिम का है धान बाजरा।
थाली में जब सजकर आए, आतिथ्य का मान बाजरा।।

कम पानी में पले बाजरा, काल में ढाल बने बाजरा।
दाने-दाने में दीखता, खेतों का श्रृंगार बाजरा।।

खुशियों का आगार बाजरा, पोषण का आधार बाजरा।
नवाचार नव युग के पाकर, फले खूब हर बार बाजरा।।

ताकत की तलवार बाजरा, बल-बुद्धि बलवान बाजरा।
हरित स्वर्ण सा खेतों में खिलता, हलधर की मुस्कान बाजरा।।

मारवाड़ का मांड बाजरा, वीरत्व का आधार बाजरा।
श्री अन्न की उपमा पाकर, उन्नति की राह बढ़ चला बाजरा।।

काजरी की शोध-धरा पर, अविष्कार नव-तकनीक के पाकर।
पारम्परिकता के आयामों को गढ़ता, सृजन नव-व्यंजन श्रृंखला का करता।।

राब, घाट, खीच, कढ़ी, सोगरा से, बिस्किट, केक, चॉकलेट, कुरकुरे में संवर्धित होता।
प्रसंस्करण और औधोगिकीकरण की, राह पे बढ़ता, स्वरोजगार की राह दीखता।।

आत्मनिर्भर भारत को... साकार है करता
नया नहीं खाद्यान बाजरा, मरुभूमि की है शान बाजरा।
हरा-भरा मस्ती में झूमे, कृषक का स्वाभिमान बाजरा।।

[1]तकनीकी अधिकारी

नराकास की छमाही बैठक में अध्यक्ष, नराकास एवं संस्थान निदेशक प्रमाणपत्र वितरित करते हुए

नराकास के सदस्य कार्यालयों के अधिकारियों के साथ समूह छायाचित्र

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(आई.एस.ओ. 9001 : 2015)
जोधपुर 342 003 (भारत)

ICAR-Central Arid Zone Research Institute
(ISO 9001 : 2015)
Jodhpur 342 003 (India)